प्रारंभिक शिक्षा में डिप्लोमा
(डी.एल.एड.)

पाठ्यक्रम-501

भारत में प्रारंभिक शिक्षा : एक सामाजिक सांस्कृतिक परिपेक्ष्य

ब्लॉक-1

भारत में प्रारंभिक शिक्षा : एक सिंहावलोकन

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

A 24/25, सांस्थानिक क्षेत्र, सैक्टर-62 नौएडा,

गौतम बुद्ध नगर उत्तर प्रदेश-201309

वैबसाइट : www.nios.ac.in

श्रेय अंक (4=3+1)

खण्ड	इकाई	इकाई का नाम	सैद्धान्तिक अध्ययन अवधि (घंटों में)		प्रयोगात्मक अध्ययन
			विषय-वस्तु	क्रियाकलाप	
खण्ड-1 भारत में प्रारंभिक शिक्षा एक सिंहावलोकन	**इकाई 1**	भारतीय शिक्षा प्रणाली I	4	2	प्राचीन काल के गुरु एवं वर्तमान पेशेवर शिक्षक की तुलना
	इकाई 2	भारतीय शिक्षा प्रणाली II	5	3	राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 की संदर्भ में किसी भी पाठ्यपुस्तक का मूल्यांकन
	इकाई 3	शिक्षा : एक मौलिक अधिकार	4	2	शिक्षक की भूमिका एवं दायित्वों के संदर्भ में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 का विश्लेषण
	इकाई 4	प्रारम्भिक शिक्षा के सार्विकीकरण की संगठनात्मक संरचना	4	2	झारखण्ड में प्रारंभिक शिक्षा की संगठनात्मक संरचना
खण्ड-2 समकालीन संदर्भ में भारत में प्रारम्भिक शिक्षा-I	**इकाई 5**	प्रारंभिक शिक्षा के सार्विकीकरण के लिए व्यूहरचनाएँ	5	3	–
	इकाई 6	प्रारंभिक शिक्षा के सार्विकीकरण संबंधी कार्यनीतियाँ-II	5	3	संबंधित विद्यालय में मध्याह्न भोजन का अनुभव
	इकाई 7	सार्विक प्रारंभिक शिक्षा का आयोजन तथा प्रबंधान	6	3	–
खण्ड-3 समसामयिक संदर्भ में भारत में प्रारम्भिक शिक्षा-II	**इकाई 8**	प्रारंभिक शिक्षा के लिए अधयापक तैयार करना	6	3	एक चिंतनशील शिक्षक के रूप में आपके गुणों पर विचार
	इकाई 9	सुविधाा वंचित विद्यार्थियों की शिक्षा	5	3	अपने क्षेत्र के अनुसूचित जाति/जनजाति/अल्पसंख्यक बच्चों के विद्यालय आने एवं रूके रहने के मुद्दों पर विचार आपके विद्यालय में बाल अधिकारों की सुरक्षा के लिए आपकी कार्य योजना
	इकाई 10	प्रारंभिक शिक्षा में अन्तरराष्ट्रीय परिदृश्य	5	2	
		शिक्षण	15		
		योग	64	26	30
		कुल योग = 64 + 26 + 30 = 120 घण्टे			

ब्लॉक-1

भारत में प्रारंभिक शिक्षा : एक सिंहावलोकन

इकाई 1 : भारतीय शिक्षा प्रणाली-I

इकाई 2 : भारतीय शिक्षा प्रणाली-II

इकाई 3 : शिक्षा : एक मौलिक अधिकार

इकाई 4 : प्रारंभिक शिक्षा के सार्विकीकरण की संगठनात्मक संरचना

खंड प्रस्तावना

अब आप पाठ्यक्रम–1 के ब्लॉक–1 : भारत में प्रारंभिक शिक्षा : एक सिंहावलोकन का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस ब्लॉक में चार इकाइयां हैं और प्रत्येक इकाई में उप–इकाइयां हैं।

इकाई–1 में आप प्राचीन भारत में प्रचलित शैक्षिक पद्धतियों या प्रक्रियाओं के विषय में पढ़ेंगे जिसमें गुरू की बदलती हुई भूमिकाओं तथा उत्तरदायित्वों का अध्ययन भी करेंगे। इस इकाई में आप ब्रिटिश शासनकाल में स्थापित विभिन्न शिक्षा आयोगों तथा समितियों द्वारा दी गई मुख्य अनुशंसाओं की समीक्षा और उनका मूल्यांकन भी कर सकेंगे, तथा इसके अतिरिक्त 1947 से पूर्व हुए मुख्य शैक्षिक विकास पर भी दृष्टिपात कर सकेंगे। यह इकाई आपको प्राचीनकाल से लेकर स्वतंत्रता पूर्व तक भारतीय शिक्षा प्रणाली का एक संक्षिप्त ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य प्रसतुत करेगी। इतिहास बताता है कि भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है और भारतीय शिक्षा प्रणाली इस समृद्ध सांस्कृतिक विकास में अन्तः स्थापित है।

इकाई–2 में आप आधुनिक काल (स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्) में भारतीय शिक्षा प्रणाली की प्रारंभिक शिक्षा के संदर्भ में विभिन्न आयोगों और समितियों की संस्तुतियों का एक संक्षेपण प्राप्त कर सकेंगे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात स्वतंत्र भारत की प्रथम प्राथमिकता 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना था तथा एक शैक्षिक प्रणाली का अभिकल्प तैयार करना था।

इकाई–3 में आप भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 के अन्तर्गत, 86वें संविधान संशोधन के अनुसार, शिक्षा का अधिकार, अधिनियम 2009, और शिक्षा के एक मूलभूत अधिकार के रूप में बच्चे के अधिकारों के विषय में अध्ययन करेंगे।

आप आर.टी.ई. एक्ट 2009 के अन्तर्गत दिए गए प्रावधानों का अध्ययन तथा प्रारंभिक शिक्षा के सार्विकीकरण के लक्ष्यों की प्राप्ति में अध्यापक के रूप में हमारी भूमिका का अध्ययन भी करेंगे। (अनुच्छेद 45, 86 वां संविधान
संशोधन, शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009)।

इकाई–4 में प्रारंभिक शिक्षा की संरचना को परिभाषित किया गया है जिसमें राष्ट्रीय राज्य तथा जिला स्तर पर स्थापित विभिन्न संस्थाओं, जैसे एनसीईआरटी, एससीईआरटी, एसआईईएमटी, डाइट, बीआरसी, सीआरसी की भूमिका दर्शाई गई है। इन सब संस्थाओं के उद्देश्य तथा कार्य पद्धति के विषय में आप गहन रूप से जान पाएंगे।

विषय सूची

क्रम. सं.	*पाठ का नाम*	*पृष्ठ संख्या*
1.	इकाई 1 : भारतीय शिक्षा प्रणाली–I	1
2.	इकाई 2 : भारतीय शिक्षा प्रणाली–II	24
3.	इकाई 3 : शिक्षा : एक मौलिक अधिकार	45
4.	इकाई 4 : प्रारंभिक शिक्षा के सार्विकीकरण की संगठनात्मक संरचना	69

टिप्पणी

इकाई 1 भारतीय शिक्षा प्रणाली–I

संरचना

1.0 प्रस्तावना

1.1 अधिगम उद्देश्य

1.2 प्राचीन भारतीय शिक्षा – एक संक्षिप्त सर्वेक्षण

- 1.2.1 प्राचीन काल में गुरु की अवधारणा
- 1.2.2 गुरु की भूमिका तथा उसके दायित्व
- 1.2.3 वर्तमान सांवृत्तिक (व्यावसायिक) अध्यापक शिक्षा
- 1.2.4 एक अध्यापक की विशेषताएँ, उसकी भूमिकाएँ तथा दायित्व

1.3 आज की भारतीय शिक्षा की उत्पत्तिः पूर्व स्वतंत्रता काल

- 1.3.1 मकॉले मिनट्स (विवरण)
- 1.3.2 वुड्स डिस्पैच
- 1.3.3 हंटर कमीशन
- 1.3.4 विश्वविद्यालयों संबंधित आयोग
- 1.3.5 सैडलर आयोग
- 1.3.6 हार्टग समिति
- 1.3.7 सपरू समिति
- 1.3.8 अबॉट–वुड प्रतिवेदन (रिपोर्ट)
- 1.3.9 ज़ाकिर हुसैन समिति प्रतिवेदन
- 1.3.10 सार्जेंट प्रतिवेदन

1.4 सारांश

1.5 संदर्भ ग्रंथ/कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.6 अंत्य इकाई अभ्यास

टिप्पणी

1.0 प्रस्तावना

आप यह महसूस करेंगे कि प्रारम्भिक शिक्षा का सार्विकीकरण आज एक वैश्विक चिंता का विषय बन गया है। शिक्षा के इस सार्विकीकरण को **सहस्राब्दी विकास के लक्ष्यों** (MDGs) में एक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है; और इसे आजीविका से दूसरे स्थान पर रखा गया है, जिसे विश्व के 200 से अधिक देशों द्वारा अगले 15 वर्षों में प्राप्त किया जाना है (यह अवधि शीघ्र ही समाप्त होने वाली है)। इस निर्णय में भारत भी एक पक्षकार या समर्थक था। आप देख सकते हैं कि निरक्षरता उन्मूलन तथा प्रारम्भिक शिक्षा की सार्विकीकरण की प्राप्ति के लिए हमारे लगातार लगभग पचास वर्षों से किए जा रहे प्रयास अब सफल होते दिखाई पड़ने लगे हैं। आज हमारी इतनी बड़ी जनसंख्या के लिए एक विशाल शैक्षिक तंत्र खड़ा हो गया है जिसमें उन्नत नामांकन, अवधारण तथा अध्यापक–अध्येता अनुपात है, उच्च साक्षरता दर है, तथा बेहतर आधारभूत सुविधाएँ तथा उनका विकास विद्यमान है। तथापि साक्षरता अभियान, राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम, डी.पी.ई.पी., एस.एस.ए., शिक्षा का अधिकार जैसी राष्ट्रीय स्तर पर की गई पहलों के बावजूद, हमारे लाखों बच्चे अब भी विद्यालयों से बाहर हैं, हजारों अध्यापकों की भरती करने की आवश्यकता है तथा सन् 2015 से पूर्व लगभग 10 लाख अध्यापकों को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है। इस स्थिति में राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के द्वारा चलाए जाने वाला प्रारम्भिक शिक्षा में डिप्लोमा कार्यक्रम महत्वपूर्ण बन गया है।

हम इस कार्यक्रम के प्रथम पाठ्यक्रम का शुभारंभ कर रहे हैं। यह इस पाठ्यक्रम की प्रथम इकाई है। यह इकाई आप को प्राचीन समय से आरंभ करके स्वतंत्रता पूर्व काल तक के भारतीय शिक्षा के संक्षिप्त ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से अवगत कराएगी।

इतिहास के अध्ययन से आप जानते हैं कि भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे पुरानी संस्कृतियों में से एक है। किसी भी सभ्यता का सांस्कृतिक भाव तथा राष्ट्र के आदर्श उनके द्वारा अनुसरित शैक्षिक संस्थाओं के द्वारा प्रतिबिम्बित होते हैं। वास्तव में, जैसा आपको विदित है, एक सभ्य समाज में विद्यालयी संस्था तथा शैक्षिक प्रक्रिया का आरंभ उस समाज तथा संस्कृति के निर्माण, विकास तथा उसे संपोषित करने के उद्देश्य से किया जाता है। यही हमारे देश में हुआ। भारतीय शिक्षा प्रणाली भारत की समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा से जुड़ी हुई है। बहुत–सी कमियों के बावजूद, यह सामाजिक पुनर्निर्माण तथा विकास का एक सशक्त साधन रहा है।

प्राचीन भारत की शैक्षिक पद्धतियों की समीक्षा आपको रुचि कर लगेगी। आप देखेंगे कि किस भाँति उन ऐतिहासिक कालों में अध्यापक और शैक्षिक संस्थाएँ जन सामान्य के दैनिक जीवन का अंग बनी, जबकि उस समय न तो कोई मुद्रण सुविधा उपलब्ध थी और न ही कोई सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी विद्यमान थी। आप प्राचीन काल की भारतीय शिक्षा के मूल्यों को ढूँढ़ सकते हैं और आज के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में उनके औचित्य की जाँच भी कर सकते हैं।

इस इकाई में आप प्राचीन भारत के शैक्षिक पद्धतियों की संक्षिप्त समीक्षा कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त आप गुरु की परिवर्तनशील भूमिकाओं और उत्तरदायित्वों का अवलोकन भी कर पाएँगे। इसके आगे आप ब्रिटिश शासन काल में गठित विभिन्न शिक्षा आयोगों तथा समितियों का पुनर्रीक्षण तथा मूल्यांकन कर सकेंगे तथा बता सकेंगे कि उनकी अनुशंसाओं ने भारतीय शिक्षा के विकास को किस भाँति प्रभावित किया। आप विशेषकर स्वतंत्रता पूर्व में हुए प्रारंभिक शिक्षा के विकास का भी पता लगा सकेंगे।

1.1 अधिगम उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप इस योग्य हो जाएँगे कि:

- प्राचीन भारत की शैक्षिक रीतियों की विवेचना कर सकेंगे तथा उनकी पहचान कर सकेंगे जो आज के परिप्रेक्ष्य में भी संगत लगती हैं।
- प्राचीन भारतीय संस्कृति में गुरु की भूमिका तथा उसकी प्रतिष्ठा का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- ऐतिहासिक कालों में शिक्षा के सम्मुख आई प्रवृत्तियाँ, मुद्दे तथा चुनौतियों को बता सकेंगे।
- उन ऐतिहासिक घटनाओं का विश्लेषण कर सकेंगे जिनके कारण प्रारंभिक शिक्षा वर्तमान रूप में आ सकी।
- विभिन्न आयोगों तथा समितियों की संस्तुतियों के प्रारंभिक शिक्षा पर हुए प्रभाव की विवेचना कर सकेंगे।

1.2 प्राचीन भारतीय शिक्षा – एक संक्षिप्त सर्वेक्षण

17वीं शताब्दी से पहले की आपको ऐसी कोई पुस्तक नहीं मिलेगी जिसमें प्राचीन भारतीयों के शैक्षिक सिद्धांत तथा पद्धतियाँ उपलब्ध हों जबकि यह सत्य है कि इस प्रकार के सिद्धांत तथा पद्धतियाँ बहुत लम्बे समय तक व्यवहार में रही। सूत्रों और स्मृतियों जैसे धर्मग्रंथों में माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के मुख्य लक्षणों की रूपरेखा अवश्य मिल सकते हैं, परंतु आपको कही भी प्राथमिक शिक्षा का अलग से विवरण नहीं मिलेगा।

संभवत: प्राचीन काल में शिक्षा को स्व–उत्थान की एक प्रक्रिया समझा जाता था जो जन्म से मृत्यु पर्यन्त चलती रहती थी। प्राथमिक अवस्था में यह जीवन जीने और दैनिक क्रियाकलाप संपादित करने की शिक्षा थी और अत: संभवत: इसे औपचारिक शिक्षा की एक अलग अवस्था नहीं माना गया। यह जीवन की तैयारी थी।

आपको देश में वह साहित्य उपलब्ध हो सकता है जिसमें ज्ञान को व्यक्ति का तीसरा नेत्र समझा जाता है या कहा गया है कि जो जीवन के सभी मामलों को अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। हमारे पूर्वजों की मान्यता रही है कि शिक्षा द्वारा विकसित अंतर्दृष्टि से बुद्धि संवर्धित

होती है जिसे एक शक्ति समझा जाता है तथा जिससे आपकी कार्यकुशलता बढ़ती है और जो आपको इस योग्य बनाती है कि आप प्रतिष्ठा, सम्मान और धन दौलत कमा सकते हैं।

ऐसी मान्यता थी कि धन दौलत से न केवल हमें प्रसन्नता मिलती है, अपितु इससे हमें हमारे धार्मिक, पारिवारिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यों के निर्वाह में भी सहायता मिलती है। अन्ततोगत्वा इससे मुक्ति का मार्ग खुलता है। भर्तहरि ने नीतिशतक में कहा है कि शिक्षा के बिना हम पशु समान हैं। ऐसी धारणा रही है कि शिक्षा विभिन्न रूपों में व्यक्ति तथा समाज में परिवर्तन लाती हैं:

1) ज्ञानंतृतीयं् मनुजस्य नेत्रं! सुभापितत्न संदोह

2) बुद्धिर्मस्य बलं तस्य!

3) सा विद्या या विमुक्तये!

4) विद्याददाति विनयम् विनयाद्याति पात्रताम!

   पात्रत्वाद्ध नमाप्रोतिधनोर्द्ध ततः सुखम!!

5) विद्याविहीनः पशुः

शिक्षा का शुभारंभ उपनयन संस्कार से होता था तथा लड़के और लड़की दोनों को शिक्षा का अधिकार था। इतिहास में विख्यात विदूषी महिलाओं, जैसे गार्गी, अत्रेयी, कौशल्या, तारा, द्रौपदी इत्यादि के उदाहरण मिलते हैं। निम्न स्तर की शिक्षा दैनिक सांसारिक जीवन से संबंधित कार्यकलाप तथा सामाजिक अन्योन्यक्रियाओं के लिए आयोजित की जाती थी जिसका उद्देश्य अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पारिवारिक व्यवसायों के लिए तैयार करना था। उच्च शिक्षा के अंतर्गत व्याकरण, इतिहास, पौराणिक कथाएँ, वेदों, तर्कशास्त्र, राज्यतंत्र, युद्धकला या विज्ञान, ललित कला इत्यादि का गहन अध्ययन सम्मिलित था जिनका अंतिम लक्ष्य आत्मानुभूति था।

शिक्षा का उद्देश्य एक उन्नत जीवन के लिए अभ्यास के द्वारा प्रायोगिक क्रियाकलाप के लिए प्रशिक्षित करना था। जीवन की चारों अवस्थाओं – ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम तथा संयासाश्रम में एक पुत्र के रूप में, एक पति के रूप में, एक पिता के रूप में अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करना सिखाया जाता था। एक विद्यार्थी को समझाया जाता था कि वह जाति की संस्कृति का संरक्षक तथा प्रकाशस्तंभ है। शिक्षा के पश्चात् दीक्षांतभाषण के समय उसे बताया जाता था तथा आदेश दिया जाता था कि समाज के योग्य और स्वावलंबी उत्पादक सदस्य के रूप में उसके कुछ सामाजिक दायित्व और कर्त्तव्य होते हैं जिनको जीवन में उतारना पड़ता है (अल्तेकर, 1951, पृ. 301–03)

अतः आध्यात्मिकता, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व विकास, नागरिक भावना, कुशलता को प्रोत्साहन, संस्कृति का संरक्षण तथा प्रसारण शिक्षा के निश्चित लक्ष्य तथा उद्देश्य थे। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों तथा व्रत, प्रार्थनाएँ, त्यौहारों को मनाना, नैतिक आचरण करना, मानसिक वैचारिक तथा आदतों की शुद्धता, मूलवृत्तियों पर नियंत्रण,

अपने से बड़ों, अपने समकक्ष तथा अपने से छोटों के प्रति शिष्टाचार या व्यवहार संबंधी नियम, अध्यापन–अधिगम व्यवहार इत्यादि निर्धारित किए जाते थे। चौदह विधाओं/विद्वता संबंधी विज्ञान तथा 64 कलाओं (कला संबंधित दैनिक जीवन नित्य क्रिया संबंधी कार्य) शिक्षा के अभिन्न अंग होते थे। अध्ययन के लिए विद्यार्थियों को अपनी रुचि के विषय चुनने का अधिकार था। सादगी और आत्मसंयम विद्यार्थी जीवन का अंग था। आत्मविश्वास का विकास तथा आत्मसंयम के लिए अधिगम प्राचीन भारतीय शिक्षा के महत्वपूर्ण पक्ष थे। तर्कशास्त्र, दर्शन, कानून (विधि), साहित्य इत्यादि विषयों का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों में विवेक, निर्णयन तथा अन्य व्यक्तिगत संबंधी पक्ष भली भान्ति विकसित होते थे। किसी विद्वतापूर्ण वाद–विवाद में किसी एक पक्ष का समर्थन करने से पूर्व उस मुद्दे के दोनों पक्षों को समझने के लिए विद्यार्थी को प्रशिक्षित किया जाता था।

इस प्रक्रिया से व्यक्ति में लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रोत्साहन मिलता था तथा व्यक्ति में तर्कणपरकता तथा दूसरों के प्रति सहानुभूति जैसे गुणों का विकास होता था। जो विद्यार्थी वेदों का अध्ययन करते थे उनके लिए शिक्षा स्मृति का यांत्रिक प्रशिक्षण था। उनसे अपेक्षा थी कि वे समस्त साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा व्यावसायिक धरोहर को कालांतर में मात्र स्मृति की सहायता से इनके शुद्ध रूप में परिरक्षित रखें तथा उन्हें अगली पीढ़ियों को स्थानांतरित करें। स्मृति का सहारा इसलिए लिया जाता था क्योंकि उस समय ज्ञान परिरक्षण के लिए कागज या प्रिंटिग (मुद्रण) जैसे कोई साधन उपलब्ध नहीं होते थे।

संक्षिप्त रूप से आप देखेंगे कि उस काल में शिक्षा को आत्म उन्नयन (उन्नति) या जीवन पर्यन्त चलने वाली निरंतर प्रक्रिया समझा जाता था, तथा विद्यार्थियों के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक क्षमताओं को सुव्यवस्थित तथा क्रमिक विकास का स्रोत समझा जाता था जिससे वे एक लाभदायक नागरिक के रूप में जीवनयापन कर सकें तथा वर्तमान तथा भविष्य में उन्नति कर सकें।

प्रगति जाँच–1

(1) प्राचीन भारत में शिक्षा का अंतिम लक्ष्य क्या था?

....

....

....

(2) मुद्रण कला की सुविधा के अभाव में ज्ञान परिरक्षण कैसे होता था?

....

....

....

टिप्पणी

1.2.1 प्राचीन काल में गुरु की अवधारणा

प्राचीन भारत में शिक्षा की गुरुकुल प्रणाली थी। एक निश्चित अध्ययन अवधि के लिए विद्यार्थी को गुरु के साथ रहना पड़ता था। गुरु का आश्रम एक प्रकार का बोर्डिंग विद्यालय होता था। प्रत्येक विद्यार्थी, चाहे वह निर्धन हो अथवा धनवान या किस उच्च घराने से संबंध रखता हो, को एक साथ रहना पड़ता था, सभी के साथ एक जैसा (पक्षपात रहित) व्यवहार किया जाता था। आपको स्मरण होगा कि कृष्ण और सुदामा दोनों एक साथ गुरुकुल में रहते थे। गुरुकुल में शिक्षा निःशुल्क थी परंतु गुरुकुल को चलाने के लिए सभी भिक्षा (माधुकरी) के रूप में माँगनी पड़ती थी जिससे उनमें विनम्रता तथा विद्यार्थी के रूप में उनकी सहायता करने के लिए समाज के प्रति कृतज्ञता जैसे गुणों का विकास होता था। इससे जाति क्रम परंपरा को कम करने में सहायता मिलती थी क्योंकि गुरुकुल में सभी विद्यार्थियों को समान समझा जाता था।

गुरु गुरुकुल का मुखिया होता था जो सभी विद्यार्थियों के लिए पिता समान, माता–पिता या संरक्षक के समान व्यवहार करता था। वह विद्यार्थियों को उनसे बिना किसी अपेक्षा के शिक्षा प्रदान करता था। गुरु के लिए शुल्क लेना वर्जित या निषिद्ध था। विद्यादान उसकी दृष्टि में सर्वोत्तम दान समझा जाता था और ज्ञान के बेचने का विचार निंदनीय समझा जाता था। गुरुकुल चलाने के लिए राजाओं, लोकोपकारक (परोपकारी व्यक्ति) तथा समाज के धनाड्य वर्ग दान देते थे। गुरु–दक्षिणा के फलस्वरूप भी कुछ सहायता मिल जाती थी जो विद्यार्थी अपनी शिक्षा प्राप्ति के अंत में गुरुकुल छोड़ते समय गुरुकुल को अपनी श्रद्धा समान सहायता देते थे। इतना कुछ गुरुकुल चलाने के लिए पर्याप्त समझा जाता था, क्योंकि गुरुकुल में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति संयम तथा तप का जीवन व्यतीत करता था तथा उन्हें धन संग्रहण की अनुमति नहीं थी।

गुरु के रूप में केवल उसी व्यक्ति की पहचान, नियुक्ति, तथा आदर होता था जो वास्तव में एक विद्वान एक उत्कृष्ट विशेषज्ञ, तथा आध्यात्मिक रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति समझा जाता था। जैसा आप जानते हैं भारत में बहुत पुरानी गुरु–शिष्य परंपरा रही है। गुरु को उसकी स्वार्थ रहित सेवा के लिए समाज में उसे ऊँचा स्थान दिया जाता था और यहां तक भी कि राजा भी गुरु का सम्मान करते थे। गुरु को माता–पिता से भी बढ़कर माना जाता था तथा एक गुरु का दर्जा देवताओं से भी बढ़कर था।

गुरुर्ब्रह्मागुरुर्विष्णुःगुरु देवो महेश्वर
गुरु साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरु नमः

गुरु को ह्रदय, मस्तिष्क, हाथ, आध्यात्मिकता, ज्ञान तथा विद्वता के अच्छे गुणों का प्रतीक समझा जाता था। एक सही गुरु अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक एक विद्यार्थी (जो हर समय विद्या का ग्राही हो) होता था। यह हमारे आज के एल–3 (L-3) टीचर की अवधारणा (Life Long Learner) के अनुरूप है। उसे Guide the side, no 'sage on the stage' समझा जाता था (अर्थात् वह एक साथी के समान मार्ग दर्शक था, न कि मंच पर विराजमान महात्मा)।

टिप्पणी

उस समय के गुरु अपने आपमें एक संपूर्ण संस्था के समान होते थे जो अपनी विद्वता तथा बलिदान के लिए जाने जाते थे। भारत में ऐसे गुरु के प्रति सारी दुनिया के विद्यार्थी आकर्षित होते थे और भारत में विद्या ग्रहण करने आते थे। जब विद्यार्थियों की संख्या अधिक हो जाती थी तो गुरु अपने पुराने, वरिष्ठ तथा प्रतिभाशाली शिष्यों को अध्यापन–अधिगम प्रक्रिया में सम्मिलित कर लेते थे। इससे अध्यापक को उसके कार्य में आवश्यक सहायता मिल जाती थी तथा उन पुराने विद्यार्थियों के लिए गुरु के प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण में अध्यापन के प्रशिक्षण का अवसर प्राप्त हो जाता था जो अध्यापक बनने के इच्छुक होते थे।

मॉनीटर प्रणाली वास्तव में प्राचीन भारतीय शिक्षा का ही योगदान है जिसके अंतर्गत वरिष्ठ विद्यार्थी (जो या तो गुरु पुत्र होते थे अथवा कोई योग्य वरिष्ठ विद्यार्थी) छोटी कक्षा के विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। बाद में मनु काल में जब चातुर्वर्ण्य (वर्ण व्यवस्था) ने एक सामाजिक व्यवस्था का रूप ले लिया तो कोई भी ब्राह्मण पुत्र गुरु बनाया जाने लगा चाहे वह विद्वान था अथवा नहीं। पिता अपने पुत्र को एक अध्यापक के रूप में प्रशिक्षित करने लगा और इस प्रकार अध्यापन मात्र ब्राह्मणों का पारिवारिक व्यवसाय बन कर रह गया।

1.2.2 गुरु की भूमिका तथा उसके दायित्व

प्राचीन भारत में गुरु को विभिन्न प्रकार की भूमिकाएँ संपादित करनी होती थी। वह विद्यार्थियों के लिए माता–पिता की, अध्यापक की, एक विद्वान की, एक धर्म प्रचारक (मिशनरी) की तथा एक मित्र, एक दार्शनिक तथा पथ प्रदर्शक की भूमिका निभाता था। विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को व्यक्तिगत रूप से देखभाल करता था। यह देखना गुरु का ही कर्त्तव्य था कि विद्यार्थी विकास कर रहा है और गुरु तथा स्वयं की संतुष्टि से प्रगति कर रहा है। अध्यापक और शिष्य में पिता और पुत्र की तरह अत्यंत गहन या आंतरिक संबंध होता था। इस संबंध की *उपनिषद्* में भली भांति व्याख्या की गई है। *उपनिषद* का शाब्दिक अर्थ है "निकट बैठना"। अध्येता अध्यापक के चरणों में बैठकर विद्यार्जन करता था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मानियर विलियम द्वारा रचित शब्दकोश के अनुसार "*उपनिषद* का अर्थ है "परमात्मा के ज्ञान को प्रकटित या उद्घाटित कर अंधकार को दूर भगा देना है।" कठोपनिषद तथा बृहदरणायक उपनिषद पर शंकराचार्य की व्याख्या के अनुसार उपनिषद की विषयवस्तु आत्मविद्या है: अर्थात् आत्म ज्ञान या ब्रह्मज्ञान।

अध्यापन विधि गुरु और शिष्य के बीच मौखिक संवाद के रूप में थी। इसके अतिरिक्त व्याख्यान, प्रवचन, वाद–विवाद, तथा विवेचना, सस्वर पठन तथा पुनरावृत्ति विद्यार्थी की दैनिक नित्यक्रिया के अंग थे। मूल्यांकन सतत् तथा व्यापक रूप से होता था जिसे गुरु संचालित करता था। औपचारिक रूप से कोई परीक्षा नहीं होती थी, कोई डिग्री या सर्टिफिकेट नहीं दिए जाते थे; केवल दीक्षांत समारोह के समय गुरु यह घोषणा करता था कि अमुक विद्यार्थी ने अनुबद्ध (stipulated) अध्ययन की पूर्ति के पश्चात् स्नातक की उपाधि प्राप्त कर ली है। गुरु उस अर्हता प्राप्त विद्यार्थी को एक विद्वत मंडली के सम्मुख प्रस्तुत करता था जो उससे प्रश्न पूछ सकते थे। अथवा विद्यार्थी को वाद–विवाद के लिए

कहा जाता था ताकि वह अपनी योग्यता सिद्ध कर सके। इसमें प्राप्त सफलता के पश्चात विद्यार्थी विषय विशेष में अपने पांडित्य के लिए जाना जाता था और उसे एक विद्वान व्यक्ति के रूप में स्वीकार कर लिया जाता था।

अध्ययन काल में विद्यार्थी की स्वायत्तता को सम्मान दिया जाता था। विद्यार्थी अपना गुरु तथा विषय चुनने में स्वतंत्र था। यद्यपि, यह गुरु का विशेषाधिकार माना जाता कि वह किस विद्यार्थी विशेष को अपने शिष्य के रूप में स्वीकार करें या नहीं। आप देख सकते हैं कि बौद्ध काल में मठों और मंदिरों में उच्च शिक्षा केन्द्रों के रूप में शैक्षिक संस्थाओं को औपचारिक रूप से स्थापित किया गया। सम्राट अशोक के शासनकाल में हिंदु गुरुकुलों के प्रतिपक्ष या पूरक के रूप में इन स्थानों को विशाल प्रतिष्ठानों के रूप में विकसित किया गया। ये आवासी विश्वविद्यालय बन गए, जहाँ अध्यापकों/गुरुओं और विद्यार्थियों के समूह, ज्ञान की खोज में साथ–साथ रहते तथा काम करते थे। वे अपने आपको ज्ञान के सृजन, संरक्षण, तथा प्रसारण में व्यस्त रखते थे जो आज के विश्वविद्यालयों के तीन प्रकार्यों: अध्यापन, शोध तथा प्रसारण के समान हैं:

गुरुकुल में प्रवेश प्रवेश–परीक्षाओं के माध्यम से होते थे। ये परीक्षाएँ अत्यंत कठिन होती थी और उच्च शिक्षा के जाने माने केन्द्रों – तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभी, नाडिया, काँची, बनारस, इत्यादि स्थानों, पर आयोजित की जाती थी। इन केन्द्रों पर पूरे भारत से तथा विदेशों से भी विद्यार्थी आते थे।

गुरुकुलों की यह विशेषता रही है कि इनमें शिक्षा व्यक्तिगत आधार पर दी जाती थी, एक संस्था के रूप में नहीं। पाठशालाओं की भाँति मध्यकालीन भारत में इस्लामी शिक्षा देने के लिए मस्जिदों में निम्न स्तर की शिक्षा के लिए मकतब तथा उच्च प्रारम्भिक के लिए मदरसे स्थापित किए गए। यह इस्लामी शिक्षा जोकि पवित्र कुरान का भाग होता था मुसलमान बच्चों को मुल्लाओं तथा मौलवियों द्वारा दी जाती थी। यह व्यवस्था उस समय तक चलती रही जब तक भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी आई जिसने बहुत सारे प्रदेशों पर नियंत्रक सत्ता के रूप में अपने आपको स्थापित किया।

1.2.3 वर्तमान सांवृत्तिक (व्यावसायिक) अध्यापक शिक्षा

यद्यपि, प्राचीन भारतीय शिक्षा के ऐसे बहुत सारे पक्ष हैं जिन्हें आधुनिक शिक्षा में अंगीकार किया जा सकता है। तथापि यदि आप आज एक व्यावसायिक अध्यापक बनना चाहते हों तो आपको विभिन्न कौशलों/गुणों को सीखना पड़ेगा, उनमें प्रवीणता प्राप्त करनी पड़ेगी, उन्हें आत्मसात् करना होगा और दूसरे व्यक्तियों के साथ अपनी अन्योन्यक्रिया में निदर्शित करना होगा। ये कुछ गुण निम्नलिखित हो सकते हैं:

- **प्रभावनीय तथा सकारात्मक**: सकारात्मक रूप से सोचिए तथा दूसरों को भी सकारात्मक बनने के लिए प्रोत्साहित कीजिए।
- **अभिव्यक्तिशील**: दूसरों के साथ विचारों का आदान प्रदान, और प्रभावी संप्रेषण को प्रोत्साहित कीजिए।

टिप्पणी

- **एक अच्छा श्रोता**: विद्यार्थियों की बातों को समानुभूतिपूर्वक सुनिए।
- **विश्वसनीयः** दूसरों के साथ कार्य करने में आपका व्यवहार ईमानदार, खुला तथा प्रामाणिक होना चाहिए।
- **प्रीतिकर व्यवहारः** दूसरों के साथ सकारात्मक तथा पारस्परिक कार्य संबंध स्थापित कीजिए तथा उन्हें जारी रखें; वैयक्तिक अन्योन्यक्रिया तथा लगाव के द्वारा विश्वास के वातावरण का निर्माण कीजिए।
- **व्यवस्थित/संगठितः** योजनाबद्ध तथा क्रमबद्ध तरीके से कार्य करें।
- **आत्मविश्वासी तथा संतुलित** बनिए तथा बच्चों को सकारात्मक आत्म–संप्रत्यय विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करें।
- **अभिप्रेरणात्मकः** कुछ मानकों तथा अपेक्षाओं को संजोए हुए, उत्साहित
- **रचनात्मकः** क्रियाकलापों की दृष्टि से
- **संवेदनशील/सहानुभूतिशीलः** दूसरों को ध्यान रखने वाला, परानुभूतिशील और भावनात्मक स्तर पर अन्य व्यक्तियों के अनुक्रिया करने में सक्षम अपने विचारों तथा भावनाओं में खुला तथा दूसरों को ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित करने वाला।
- **नम्यः** दूसरों की सहायतार्थ अपनी योजनाओं और दिशाओं को बदलने में सक्षम।
- **व्यक्तिगत रूप से अनुभूति क्षमः** प्रत्येक बालक को अनुमान व महत्वपूर्ण समझने वाला।
- **मूल्य आधारितः** मानव की योग्यता तथा सम्मान पर केन्द्रित करने वाला।
- **समुदाय के मूल्य के प्रति संवेदनशील**
- **सुविज्ञ** (जानकार) जो सदैव ज्ञान की खोज में तत्पर हो।
- **सृजनात्मकः** बहुमुखी, नवाचारी, तथा नए विचारों के प्रति प्रभावनीय (Open)
- **सहनशील/धीरः** सदैव वस्तुगत तथा न्यायोचित रहने का प्रयास करने वाला।
- **प्रतिबद्धः** विद्यार्थियों तथा अपने व्यवसाय के प्रति

एक सांवृत्तिक अध्यापक को घमंडी हुए बिना आत्मविश्वासी होना चाहिए। समूह के साथ अन्योन्यक्रिया में व्यावसायिक मानक व्यवहार की आवश्यकता होती है जिसमें विनम्रता, दृढ़ता तथा न्यायसंगतता होनी चाहिए। सांवृत्तिकता के लिए उपयुक्त तैयारी भी एक अन्य महत्वपूर्ण आवश्यकता होती है। जब आप कक्षा में प्रवेश करें तो आपके पास सभी अपेक्षित सामग्री तथा पाठ योजना तैयार होनी चाहिए। यदि आप पूर्ण तैयारी से कक्षा में नहीं जाते हैं तो इससे बुरा और कुछ नहीं होता।

1.2.4 एक अध्यापक की विशेषताएँ, उसकी भूमिकाएँ तथा दायित्व

परिवर्तनशील समाजः आप देखते हैं कि आज सूचना तथा प्रौद्योगिकी की दखल के कारण वैश्विक समाज में विस्मयकारी परिवर्तन हो रहे हैं। आई.सी.टी. हमारे जीवन के

लगभग सभी पक्षों को प्रभावित कर रही है। वर्तमान संदर्भ में, हम कुछ दशकों में एक नई सामाजिक व्यवस्था उभर कर आ रही है। इन परिवर्तनों का कोई पहले उदाहरण नहीं देखा गया। प्रौद्योगिकीय विकास या प्रगति इतनी तीव्रता से हो रही है कि यह कल्पना करना संभव नहीं कि अगले 100 वर्ष के पश्चात हमारा जीवन कैसा होगा? परंतु अगले 10 या 20 वर्षों में जीवन कैसा होगा, इसकी कल्पना की जा सकती है। हम कल के कैसे समाज की कल्पना कर रहे हैं? इस सामाजिक परिवर्तन के कारण शिक्षा के संप्रत्यात्मक ढाँचे तथा प्रयोजन में कौन से परिवर्तन आ रहे हैं? अध्यापन विधियाँ कैसे बदल रही हैं? क्या आज की शिक्षा कल के संदर्भ में संगत होगी भी या नहीं? आज के इस परिवर्तित समाज को एक तात्कालिक क्रिया योजना की आवश्यकता है ताकि शिक्षा नई सामाजिक संरचना तथा इस अप्रत्याशित अभूतपूर्व आवश्यकताओं से मेल खा सके।

संयोजित तथा ज्ञानाधारित समाजः जैसा कि उपर्युक्त अनुच्छेद में आपने देखा कि हमारे जीवन को सूचना तथा प्रौद्योगिकी में हुए विकास ने अप्रत्याशित रूप से प्रभावित किया है। आई.सी.टी. उपकरणों तक तकनीकों के व्यापक अनुप्रयोगों ने जीवन में तथा विश्व में एक क्रांति सी ला दी है जिस में शिक्षा भी सम्मिलित है। मोबाइल फोन, टेलीविजन, कम्प्यूटर जैसे चमत्कारी उपकरणों से हम क्या क्या कर सकते हैं, अविश्वसनीय सा लगता है। एक ओर जहाँ ये अनुप्रयोग संख्या में बढ़ते जा रहे और प्रतिदिन नए–नए क्षेत्रों तक फैलते जा रहे हैं, दूसरी ओर वे इतने सस्ते हो रहे हैं कि समाज के पददलित अथवा शोषित वर्ग भी उनका प्रयोग अपने दैनिक जीवन की क्रियाओं में कर रहे हैं। भारत की इतनी बड़ी जनसंख्या में करोड़ों व्यक्ति मोबाइल फोन, टेलीफोन, इंटरनेट तथा कम्प्यूटर पर सोशल नेटवर्क से जुड़ चुके हैं और यह संख्या घातीय रूप से बढ़ रही है।

7.10.2011 को टी आर ए आई की वेबसाइट से प्राप्त सांख्यिकी दर्शाती है कि भारत में इस समय इंटरनेट के उपभोक्ता/प्रयोक्ता 100 मिलियन से भी अधिक है जिनमें 40 मिलियन प्रयोक्ता मोबाइल फोन के माध्यम से इंटरनेट का प्रयोग करते हैं। जून 2011 के अंत तक भारत में 851.70 मिलियन ग्राहक/उपभोक्ता मोबाइल फोन के थे, 855.99 मिलियन के पास टेलीफोन कनैक्शन थे। प्रति मास मोबाइल फोन उपभोक्ताओं की संख्या 11.41 मिलियन बढ़ जाती है। जब वैश्विक अर्थव्यवस्था में हर चीज महँगी होती जा रही है, एकमात्र वस्तु जो सस्ती है वह है आई सी टी, जबकि इसे उपलब्धता, उपयोगिता, गुणवत्ता, समर्थता, तथा सामाजिक प्रभाविता में प्रतिक्षण सुधार हो रहा है। तथापि, इंटरनेट के साथ कम्प्यूटर की अधिगम प्रक्रिया में साझेदारी तथा मुख्य योगदान की गति अत्यंत धीमी है। जब सारा विश्व इंटरनेट से जुड़ चुका है हम अभी भी असंबद्ध रूप से या वियोजित रूप से बच्चों को पढ़ा रहे हैं चाहे वह विषयों की विषयवस्तु हो हम समग्र रूप से जीवन के साथ इनका उपयोग नहीं कर पा रहे हैं।

आई.सी.टी. के शैक्षिक प्रक्रिया में अनुप्रयोग

आज की शैक्षिक प्रक्रियाएँ भी आई.सी.टी. अनुप्रयोगों से प्रभावित हो रही हैं। हम देख सकते हैं कि आई.सी.टी. का उपयोग पाठ्यचर्या विकास में, अध्यापन शैलियों में, अधिगम प्रक्रिया

में, मूल्यांकन तथा मूल्य निर्धारण में, ऑन लाईन परीक्षा, ऑन डिमाण्ड परीक्षाओं, पाठ्यचर्या कार्य संपादन और नई अधिगम प्रक्रियाओं जैसे सहयोगात्मक कार्य करने में अध्यापन और विकास, स्व–अध्ययन, मुक्त शिक्षा संसाधन, ऑनलाइन अधिगम के रूप में काफी लाभकारी सिद्ध हुए हैं।

आज के अध्यापक को उन मुद्दों से जो नई अधिगम प्रक्रिया तथा नवीन अधिगम पर्यावरण से जुड़े हैं, संबद्ध होना होगा। उन्हें यह मालूम करना होगा कि अधिगम का सरलीकरण कैसे किया जा सकता है तथा परिवर्तन दर को कैसे त्वरित किया जा सकता है। इस संबद्ध समाज में आज के विद्यार्थियों को अगले 50 वर्षों तक एक सक्रिय जीवन जीना पड़ेगा। उन्हें नई सक्षमताओं (योग्यताओं) क्षमताओं तथा कौशलों की आवश्यकता पड़ेगी ताकि वे वैश्विक समाज के कुशल तथा उत्पादक नागरिक बन सकें। सामाजिक परिवर्तन एक उपकरण के रूप में शिक्षा को उभरते समाज की आवश्यकताओं को पूरा करना पड़ेगा। आज के इस ज्ञानाधारित समाज में शिक्षा एक विषयवस्तु आधारित, अध्यापक–केन्द्रित 3 आर की साक्षरता नहीं है, अपितु यह एक अध्येता–केन्द्रित, कार्य आधारित कम्प्यूटर साक्षरता तथा योग्यता है जो अधिगम का सरलीकरण करती है, मात्र अपनी संस्कृति के मूल्य जिसके लिए महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि वैश्विक मूल्यों को भी समझना और सीखना है।

पाठ्यचर्यात्मक कार्यकलाप की शैली मात्र परम्परागत कक्षा, जिसमें अध्यापक–अध्येता आमने–सामने अन्तःक्रिया करते हैं, तक ही सीमित नहीं है अपितु इसके अंतर्गत स्वः अधिगम तथा विभाजित कक्षा भी आती है।

आज हमारे जीवन दर्शन भी आदर्शवाद से प्रयोजनवाद की ओर परिवर्तित होता जा रहा है। जीवन का फोकस व्यक्तिगत विकास अर्थात, मुक्ति (अंतिम लक्ष्य, मोक्ष) से सामाजिक उपयोगिता तथा राष्ट्रीय विकास के साथ व्यक्तिगत विकास तथा समृद्धि की ओर स्थानान्तरित हो गया है। ऐसे सामाजिक रूपांतरण की प्रक्रिया में नई आवश्यकताएँ उभर कर आ गई हैं, नए सरोकारों का जन्म हुआ है, नए संदर्भ विकसित हो गए हैं तथा नई समस्याएँ तथा उनके नए समाधान उभरकर आए हैं। नई प्रकार की नौकरियाँ (व्यवसाय) पैदा हुए हैं, तथा नई सेवाएँ प्रदान की जा रही हैं जिनके लिए व्यक्तियों के लिए नई योग्यताएँ तथा कौशलों की आवश्यकता पड़ती है ताकि अधिकतम रूप से कार्य संपादन किया जा सके। इसके लिए परम्परागत रूप का अध्यापन–अधिगम पर्याप्त नहीं है अपितु स्वःअधिगम तथा समूह सहोगात्मक कार्य पद्धति की आवश्यकता है, ऐसे अधिगम की जिसकी सहायता मेंटर करें प्रौद्योगिकी जिसे सहारा दे तथा सब लोग साथ–साथ कार्य करें।

अध्येता की स्वायत्तता: शैक्षणिक प्रक्रियाएँ इस प्रकार से परिवर्तित हो रही है जिसमें अध्येताओं की स्वायत्तता का सम्मान हो। अध्येता को सर्वोच्च माना जाता है जिसके पास अपनी अधिगम कार्यनीतियाँ चुनने के लिए बहुत सारे विकल्प उपलब्ध हैं। नई अधिगम प्रक्रियाएँ जैसे स्वःअध्ययन, सहयोगात्मक/सहकारी अधिगम, ई–लर्निंग तथा ब्लैंडिड लर्निंग,

समूह अधिगम, कार्य करना, विकसित होना, एल–3, अध्यापकों/अध्येताओं का समूह सोशल नेटवर्किंग जैसे ब्लॉग/फेसबुक/ट्वीटर/वैबपेजिस इत्यादि सम्मिलित हैं का विचारों अनुभवों, विचार–विमर्श और अधिगम की भागीदारी के लिए प्रयोग किया जा रहा है। ज्ञान के सृजन तथा भागीदारी में परंपरागत शैक्षणिक विधियों की तुलना में ओ ई आर का विकास और उपयोग, पाठ्यचर्या विकास और संचालन के लिए नई तकनीकें तथा प्रौद्योगिकी, रचनात्मक शैक्षणिक विधि जैसी नई शिक्षण विधि अधिक प्रभावी सिद्ध हो रही है।

विकासशील समाज में अध्यापक की भूमिकाः प्रौद्योगिकी की चुनौतियों के फलस्वरूप अध्यापक के लिए नई भूमिकाएँ सृजित हुई है। लॉरीलार्ड्स कर्वसेशन मॉडल में अध्यापक के लिए चार प्रकार की भूमिकाओं का जिक्र है: उदाहरणार्थ: अध्यापक के तर्कमूलक विधि, अनुकूली विधि, अन्योन्यक्रियात्मक विधि, तथा विमर्शक विधि। शिक्षा के अधिकार के अंतर्गत अध्यापक की भूमिकाओं तथा उत्तरदायित्वों का निर्धारण किया गया है। इनका विवरण अगली इकाई में दिया गया है।

आज के नए विश्व में बहुत सारी ऐसी भूमिकाएँ हैं जिनके संपादन की अपेक्षा अध्यापक से है। कुछ विशिष्ट भूमिकाओं में निम्नलिखित सम्मिलित है:

- ई–कल्चर का विकासक तथा पोषक
- नेट–वर्कर तथा परिवर्तनकर्त्ता
- अधिगमकर्त्ता तथा सुसाध्यक
- अधिगम संसाधन विकासक
- टैक्नो पेडागोगी (टैक्नो–शिक्षक)
- मूल्यांकनकर्त्ता
- क्रियात्मक शोधकर्त्ता
- व्यवहार विज्ञानी
- पाठ्यचर्या अभिकल्पक तथा कार्य संपादक (transactor)
- शैक्षणिक प्रणाली अभिकल्पक

परंतु प्रश्न यह है कि क्या हमारी शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत ऐसे अध्यापकों का निर्माण होता है? प्राचीन काल के गुरु तथा आधुनिक अध्यापक के मध्य बहुत सी समानताएँ देखी जा सकती हैं। परंतु परिस्थितियाँ एक दम से भिन्न हैं। अत: इन की तुलना करने से पूर्व, विशेषकर प्रारम्भिक शिक्षा के संदर्भ में उन अवस्थाओं तथा परिस्थितियों को देखना पड़ेगा जिनमें से होकर आधुनिक शिक्षा उभर कर आई हैं और अध्यापक की भूमिकाएँ परिवर्तित हुई है।

टिप्पणी

1.3 आज की भारतीय शिक्षा की उत्पत्तिः पूर्व स्वतंत्रता काल

वैदिक काल की समाप्ति तथा मध्यकाल के दौरान, मिशनरी तथा बहुत सारे धार्मिक समूह भारतीय जनता के लिए कुछ मूलभूत शिक्षा भारत में लाए थे। इसमें गिरज़ाघरों में अंग्रेज़ी के माध्यम से, देशीय मंदिरों में संस्कृत के माध्यम से, तथा मदरसों में फारसी तथा अरबी के माध्यम यह शिक्षा दी जाने लगी, जिससे कुछ बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति समकालीन राजाओं और धनाड्य व्यक्तियों के दान से पूरी होने लगी जब तक कि ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना नहीं हुई और ब्रिटिश संसद सम्मिलित नहीं हुई। तथापि भारत में वर्तमान शिक्षा प्रणाली का आरंभ उन्नीसवीं शताब्दि से हुआ।

भारतीय इतिहास में शिक्षा की राज्य प्रणाली की स्थापना एक चार्टर अधिनियम के द्वारा औपचारिक रूप से हुई। ईस्ट इंडिया कम्पनी के चार्टर (घोषणापत्र) का नवीनीकरण ब्रिटिश संसद के द्वारा प्रत्येक बीस वर्ष के पश्चात् होता था। जब सन् 1813 में नवीनीकरण के लिए चार्टर लाया गया, ब्रिटिश संसद ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को यह आदेश दिया कि वह प्रत्येक वर्ष साहित्य के पुनर्जीवन, भारत के देशी विद्वानों के प्रोत्साहन, तथा ब्रिटिश क्षेत्रों के वासियों में विज्ञान के ज्ञान के संस्थापन तथा उन्नयन के लिए अलग से एक लाख रुपये की धनराशि का प्रावधान करे या निर्धारित करें। इस प्रकार यह प्रथम बार हुआ कि महारानी बर्तानिया के द्वारा शिक्षा के लिए सरकारी रूप से वित्तीय व्यवस्था की गई और देशी नागरिकों की शिक्षा के लिए ईस्ट इंडिया कम्पनी को दायित्व सौंपा गया।

1.3.1 मकॉले मिनट्स (विवरण)

लॉर्ड मकॉले, जोकि भारत के लिए बनी सर्वोच्च काउंसिल (परिषद) का सदस्य था, सन् 1934 में भारत आया, उस समय भारत के गवर्नर जनरल विलियम बैंटिक थे। मॅकाले भारत में केवल चार वर्ष के लिए रहे परंतु इस छोटी अवधि में उसने लाखों भारतीयों के भाग्य को सदा के लिए प्रभावित कर दिया।

अंग्रेजी की सर्वोच्चता

लॉर्ड मकॉले, जो "जनरल कमेटी ऑन पब्लिक इंस्ट्रक्शन" का चैयरमेन था, ने जनवरी 1935 में एक स्मरण पत्र (मेमोरैंडम) तैयार किया तथा प्रसारित किया। उसने देशज संस्कृत तथा विधाओं, देशज, ज्ञान तथा भाषाओं के माध्यम जैसे संस्कृत, अरबी तथा फारसी के विरुद्ध एक निर्णयात्मक आधार लेते हुए इन्हें नकारा और अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से पाश्चात्य विज्ञान का समर्थन किया। इस विषय पर उस की धारणा (विचार) भारतीय शिक्षा के इतिहास में "मकॉले मिनट्स" के नाम से प्रख्यात (या यह कहें कि हमारे लिए कुख्यात) हुए

जिसने भारतीय शिक्षा पद्धति को गहन रूप से प्रभावित किया। हमें देशी शिक्षा पद्धति के विषय में सोचने भर में 100 वर्ष लग गए जब सन् 1937 में महात्मा गाँधी ने वार्धा कांफ्रेंस में बेसिक एजुकेशन (बुनियादी शिक्षा) का प्रस्ताव रखा। और आज लगभग 200 वर्ष के पश्चात् भी मकॉले के प्रभाव को मिटा नहीं पाए हैं। वर्तमान शिक्षा पद्धति पर आज भी मकॉले के प्रभाव किसी न किसी रूप में देखने को मिलता है जैसे भारत में माता–पिता आज भी अपने बच्चों की शिक्षा के लिए अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों को प्राथमिकता देते हैं।

मकॉले ने अंग्रेजी की तुलना में देशज भाषाओं (संस्कृत तथा अरबी दोनों) को नकारा क्योंकि उसके विचार में अंग्रेजी इन दोनों भाषाओं से कही ऊपर थी जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। उसने बड़े ही घमंड (दर्प) से यह झूठा दावा किया कि एक अच्छी यूरोपीय लाईब्रेरी की एक अकेली अलमारी, समस्त भारत और अरब के पूरे साहित्य से अच्छी है। निःसंदेह यूरोपीय साहित्य आंतरिक रूप में इन सबसे श्रेष्ठ है" उसके अनुसार भारत में अंग्रेजी का प्रयोग शासक वर्ग करता है तथा सरकार में बैठे उच्च वर्गीय मूल भारतीय निवासी भी इसका प्रयोग करते हैं। अतः जो बात हम अरबी और संस्कृत के कॉलेजों पर करते हैं वह सत्य के उद्देश्य के लिए कोरा घाटा है; वह तो भ्रांति के समर्थकों को ऊपर उठाने के लिए दिया गया उदार दान या आनुतोषिक है।"

मकॉले ने आगे कहा कि "सीमित वित्तीय संसाधनों के साथ हमारे लिए यह असंभव है कि हम सारी जनता को शिक्षित करें। इस समय हमें अपना पूरा प्रयत्न करना चाहिए एक ऐसे वर्ग का निर्माण करें जो हमारे और लाखों लोगों के मध्य जिन पर हम शासन करते हैं, दुभाषिया का काम करे, एक ऐसा वर्ग जो रक्त और रंग से तो भारतीय हो,परंतु अपनी रुचियों, विचारधारा, नैतिकता तथा बुद्धि में अंग्रेज हो। उस वर्ग पर हम यह दायित्व सौंप सकते हैं कि वह देश भी देशी बोलियों को परिष्कृत करें, उन बोलियों को पाश्चात्य नामावली से गृहीत विज्ञान की शब्दावली से संपन्न या समृद्ध करें और उन्हें आहिस्ता–आहिस्ता इस योग्य बनाए कि वे समस्त जनसंख्या तक उस ज्ञान को ले जा सके।"

मकॉले के मिनट्स तथा डाउनवार्ड फिल्ट्रेशन थ्योरी (अधोगामी निस्पंदन सिद्धांत) को लार्ड बैंटिक, जो उस समय भारत के गवर्नर जनरल थे, ब्रिटिश साम्राज्य की ओर से स्वीकार कर लिया और आदेश दिए कि भारतीय शिक्षा प्रणाली के लिए अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम स्वीकार किया जाए। उस दिन के पश्चात् मकॉले के मिनट्स लगभग दो शताब्दियों तक भारत में शिक्षा का आधार बन गए और हम आज स्वतंत्रता के पश्चात् भी अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम मानते आ रहे हैं और इतना ही नहीं अंग्रेजी की तुलना में राष्ट्रीय भाषाओं से शिक्षित व्यक्ति को हीन ही समझा जा रहा है।

टिप्पणी

प्रगति जाँच–2

(1) संक्षिप्त रूप से "अधोगामी निस्पंदन सिद्धांत" का वर्णन करें।

....

....

....

(2) पूर्वी साहित्य के प्रोत्साहन की अपेक्षा मकॉले सरकारी फंड (निधि) का प्रयोग अंग्रेजी के उन्नयन के लिए क्यों करना चाहता था?

....

....

....

1.3.2 वुड्स डिस्पैच

व्यापक शिक्षा प्रणाली और संगठनात्मक संरचनाः उपर्युक्त अनुच्छेदों में आपने देखा कि किस प्रकार लॉर्ड मकॉले के मिनट्स ने बैंटिक सरकार की शिक्षा नीति को प्रभावित किया जो अगले 40 वर्ष तक लागू रही। सन् 1853 में जब कम्पनी चार्टर को नवीनीकरण विचार के लिए ब्रिटिश संसद के सम्मुख आया तो संसद ने भारत में शिक्षा की प्रगति की जाँच की। इस जाँच के आधार पर की गई टिप्पणियों तथा प्रस्तावित सुधारों के रूप में शिक्षा का चार्टर, जिसे सन् 1854 का वुड्स डिस्पैच कहा जाता है, जारी किया गया। भारत में वुड्स डिस्पैच को शिक्षा का मैग्ना कॉर्टा (महाधिकारपत्र) समझा जाता है। ब्रिटिश संसद की ओर शिक्षा नीति के रूप में अपनाई जाने वाली यह पहली सरकारी घोषणा थी। यह वुड्स डिस्पैच (प्रेषण) एक महत्वपूर्ण व्यापक शैक्षिक दस्तावेज है तथा भारतीय शिक्षा के इतिहास में इसका एक अनन्य (अनूठा) स्थान है। वुड्स डिस्पैच के द्वारा भारतवासियों की शिक्षा का दायित्व ईस्ट इंडिया कम्पनी पर डाला गया और स्पष्ट किया गया कि किसी भी अवस्था में इसकी अवहेलना न हो। इस प्रेषण ने भारत में शिक्षा को एक नई दिशा दी जिसका आज की भारत की शिक्षा पर प्रभाव देखा जा सकता है।

इस शिक्षा का उद्देश्य यूरोपीय कलाओं, विज्ञान, दर्शन तथा साहित्य का अंग्रेजी के माध्यम से प्रसारण था। भारतीय भाषाओं के उन्नयन को प्रोत्साहित करना भी इस उद्देश्य में सम्मिलित था। लोक नौकरशाही की उत्पत्ति इस शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य था। इस प्रयोजन के लिए जनशिक्षा के प्रसार को प्राथमिकता दी गई।

इसके लिए बहुत सारे प्राथमिक, मिडिल तथा हाई स्कूल खोले गए।

प्रथम बार वुड्स डिस्पैच ने देश के पाँचों प्रांतों – बंगाल, बम्बे, मद्रास, पंजाब तथा नार्थ वैस्ट प्रांत में डिपार्टमैंट ऑफ पब्लिक इंस्ट्रक्शन खोले गए। उच्च शिक्षा के लिए समस्त संगठनात्मक व्यवस्था के साथ विश्वविद्यालय खोलने की योजना बनाई गई। इन विश्वविद्यालयों का उद्देश्य परीक्षाओं का संचालन करना तथा विभिन्न विषयों और भाषाओं में सफल विद्यार्थियों को डिग्री प्रदान करना था। इस के फलस्वरूप 1857 में पहले तीन विश्वविद्यालयों की भी स्थापना की गई। ये विश्वविद्यालय कलकत्ता, बॉम्बे तथा मद्रास में खोले गए।

वुड्स डिस्पैच के द्वारा शिक्षा के अधिकांश पक्षों से संबंधित अनुशंसाएँ दी गई, जैसे देशभर में श्रेणीकृत विद्यालयों – प्रारम्भिक स्कूल, हाई स्कूल, इंटरमिडिएट, कॉलेज तथा विश्वविद्यालयों का नेटवर्क स्थापित करना, विद्यालयों को वित्तीय सहायता देने के लिए ग्रांट–इन–एड (सहायक अनुदान) प्रणाली, महिलाओं की शिक्षा के लिए प्रावधान, अध्यापकों का प्रशिक्षण तथा व्यावसायिक विकास, तथा लोगों की व्यावसायिक कुशलता के विकास के लिए चिकित्सा, इंजीनियरिंग, विधि (कानून) तथा व्यावसायिक शिक्षा की अन्य संस्थाएँ।

वुड्स डिस्पैच का महत्व इस बात में था कि इसके द्वारा भारत के भावी विकास के लिए बहुत सारी मूल्यवान तथा मूलभूत अनुशंसाएँ की गई। कई मुद्दों जैसे शिक्षा का श्रेणीकरण, शिक्षा का माध्यम इत्यादि को वुड्स डिस्पैच ने एक नई दिशा प्रदान की। और भारत के भावी शैक्षिक विकास के लिए नई योजनाओं के प्रस्ताव रखें।

इस दस्तावेज़ के मुख्य प्रावधानों का ऐतिहासिक महत्व है। इससे माध्यमिक शिक्षा को और कुछ सीमा तक प्राथमिक शिक्षा को भी बढ़ावा मिला। यद्यपि ऐसा देखने में आया कि वुड्स डिस्पैच की कुछ अति महत्वपूर्ण अनुशंसाओं को काफी समय तक कार्यान्वित नहीं किया गया और कुछ का कार्यान्वयन बेढंगे तरीके से किया गया। वुड्स डिस्पैच के प्रथम तीस वर्षों में सरकारी संस्थाओं में क्रमिक रूप से बढ़ोतरी हुई परंतु क्रिश्चियन मिशनरियों को छोड़कर अन्य निजी प्रयासों को प्रोत्साहन नहीं मिला।

जन शिक्षा के प्रसार की योजना साकार नहीं हो पाई और न ही वर्नेकुलर हाई स्कूल स्थापित किए जा सके। इसमें सार्विक साक्षरता में भी कोई विशेष योगदान नहीं दिया। एक शताब्दी के पश्चात् भी वुड्स डिस्पैच भारतीय आकांक्षाओं को नहीं पहचान पाया। जैसा कि आप को विदित है, सन् 1857 के विद्रोह के तुरंत पश्चात् ईस्ट इंडिया कम्पनी को भंग कर दिया गया और सरकार सीधे ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन आ गई। फलस्वरूप साम्राज्य को संघटित (दृढ़ करने) के प्रयास आरंभ हो गए थे और शिक्षा की कुछ सीमा तक उपेक्षा की गई।

प्रगति जाँच–3

(1) वुड्स डिस्पैच की दो मुख्य अनुशंसाएँ कौन–सी थी?

....

....

....

(2) वर्तमान शिक्षा प्रणाली का कौन–सा पक्ष वुड्स डिस्पैच से सर्वाधिक प्रभावित हुआ था?

....

....

....

1.3.3 हंटर कमीशन

शिक्षा का व्यवसायीकरण: वुड्स डिस्पैच (1854) की अनुशंसाओं के कार्यान्वयन की जाँच करने हेतु, सन् 1882 में हंटर कमीशन की स्थापना की गई, जिसके कारण विद्यालयी शिक्षा को हाई स्कूल में दो स्ट्रीम (धाराएँ) बनाकर सरल और कारगर बनाने का प्रयास किया गया। इनमें से एक धारा में पढ़ने वाले बच्चे विश्वविद्यालयी शिक्षा के लिए जा सकते थे तथा दूसरी धारा वाले बच्चे वाणिज्य, व्यावसायिक तथा तकनीकी शिक्षा को अपना सकते थे। विद्यालयी पाठ्यचर्या को विविध रूप देने का तथा व्यावसायिक शिक्षा आरंभ करने का यह प्रथम प्रयास था तथापि हंटर कमीशन की विशिष्ट अनुशंसाओं तथा व्यापारी, व्यावसायिक या गैर–साहित्यिक शिक्षा पर विशेष बल देने के बावजूद न तो जनता ने और न ही सरकार ने इस प्रैक्टीकल सुझाव के महत्व को समझा; फलतः इस की अनुशंसाओं को पूर्ण रूप से उपेक्षित कर दिया। इस दिशा में पिछले 150 वर्षों में और न ही स्वतंत्र भारत में कुछ खास नहीं हो पाया है।

1.3.4 विश्वविद्यालयों संबंधित आयोग

विश्वविद्यालय नियंत्रण के अधीन विद्यालयी शिक्षा : ब्रिटिश शासन में स्थापित विश्वविद्यालयों की अवस्था तथा भविष्य की जाँच करने के उद्देश्य से सन् 1902 में एक नए आयोग की स्थापना की। इस आयोग ने विश्वविद्यालय प्रशासन के पुनर्गठन की अनुशंसा की: विश्वविद्यालय द्वारा संबद्ध कालेजों का कठोर पर्यवेक्षण तथा संबद्धता के लिए कठोर शर्तें एवं पाठ्यचर्या तथा परीक्षा प्रणाली में मुख्य परिवर्तन। आयोग की अनुशंसाओं के फलस्वरूप विद्यालयी शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण बात थी कि माध्यमिक विद्यालयों को विश्वविद्यालयी नियंत्रण में ला दिया गया। सन् 1904 में पारित विश्वविद्यालय अधिनियम के

टिप्पणी

अंतर्गत विद्यालयों को मान्यता विश्वविद्यालय द्वारा दी जाएगी और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक नियम तथा अधिगम निर्धारित किए गए।

1.3.5 सैड्लर आयोग

इंटरमिडिएट कालेजः अगला महत्वपूर्ण विकास, जैसा कि सैडलर आयोग सन् 1917 ने महसूस किया, विश्वविद्यालयी सुधार की दृष्टि से माध्यमिक शिक्षा में सुधार लाने की आवश्यकता की पूर्ति थी। यह मामला कालेज शिक्षा के द्विशाखन के कारण भी उत्पन्न हुआ। सैडलर आयोग ने उच्च शिक्षा के द्विशाखन की संस्तुति मैट्रीकुलेशन परीक्षा के बाद की बजाए इंटरमिडिएट परीक्षा के पश्चात् के लिए की और इंटरमिडिएट कालेजों की स्थापना का सुझाव दिया जिनमें कला, विज्ञान, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, अध्यापन आदि की शिक्षा का प्रावधान था। ये पाठ्यचर्याएँ चलाने के लिए या तो स्वतंत्र संस्थाएँ खोली जाए अथवा उन्हें कुछ विशेष (चयनित) हाई स्कूलों के साथ जोड़ दिया जाए। सैडलर आयोग ने यह अनुशंसा भी की कि "बोर्ड ऑफ सैकेंडरी एंड इंटरमिडिएट एजुकेशन" स्थापित कर दिए जाए जिनके अंतर्गत माध्यमिक शिक्षा का प्रशासन तथा नियंत्रण आए। संभवतः इस प्रकार सैडलर आयोग ने आज के +2 अवस्था या जूनियर कालेज की अवधारणा का बीज बोया।

सैडलर आयोग की रिपोर्ट काफी व्यापक थी और भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों ने इस आयोग के सुझावों को स्वीकार कर लिया। यह पहली बार हुआ कि किसी आयोग ने इंटरमिडिएट कक्षाओं को हाई स्कूलों के साथ जोड़ा और हाई स्कूल तथा इंटरमिडिएट शिक्षा के नियंत्रण हेतु बोर्ड ऑफ एजुकेशन बनाया।

1.3.6 हार्टग समिति

देश में शिक्षा की स्थिति की जाँच करने के उद्देश्य से सन् 1929 में हार्टग समिति की स्थापना की गई। इस समिति ने दावा किया कि विश्वविद्यालय की मैट्रीकुलेशन परीक्षा अब भी समस्त माध्यमिक पाठ्यचर्या सबसे प्रमुख या प्रबल है। इस त्रुटि को दूर करने के लिए समिति ने अनुशंसा की कि बहुत बड़ी संख्या में विद्यार्थी जो किसी व्यवसाय में लगना चाहते हैं उनके लिए मिडिल स्कूल के पश्चात् विद्यालयों में अधिक विविध पाठ्यक्रमों का प्रावधान होना चाहिए। समिति ने यह भी सिफारिश की कि अधिक बच्चे मिडिल स्कूल पास करने के पश्चात् औद्योगिक तथा व्यापारिक क्षेत्रों में भेज दिए जाए जहाँ टैक्नीकल तथा औद्योगिक विद्यालयों में उन्हें विशेष शिक्षा के लिए तैयार किया जाए। इस समिति ने अध्यापक शिक्षा तथा माध्यमिक अध्यापकों सेवा अवस्थाओं की समीक्षा भी की।

1.3.7 सपरू समिति

विविध व्यावसायिक पाठ्यक्रमः सपरू समिति की नियुक्ति सन् 1934 में उत्तर प्रदेश (उस समय – अपर प्रोविंस) सरकार ने उत्तर प्रदेश में बेरोजगारी के कारणों की जाँच करने हेतु

की। समिति का यह निष्कर्ष था कि हमारी शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों को मात्र परीक्षाओं और डिग्रियों के लिए तैयार करती है, जीवन में किसी व्यवसाय के लिए नहीं। समिति ने माध्यमिक स्तर विविध पाठ्यक्रमों की आवश्यकता को महसूस किया। इस समिति ने निम्नलिखित सुझाव दिए:

i) माध्यमिक स्तर पर विविध पाठ्यक्रम लागू किए जाएँ, जिनमें से एक विश्व विद्यालय डिग्री की ओर ले जाता हो।

ii) इंटरमिडिएट स्टेज को समाप्त कर दिया जाए और माध्यमिक शिक्षा की अवधि एक वर्ष और बढ़ा दी जाए।

iii) अवर–माध्यमिक स्तर से ही व्यावसायिक शिक्षा प्रशिक्षण आरंभ कर दिया जाए।

iv) विश्वविद्यालय के डिग्री स्तर के पाठ्यक्रमों को तीन वर्ष का कर दिया जाए।

1.3.8 अबॉट–वुड प्रतिवेदन (रिपोर्ट)

पॉलिटैक्नीकः "सैंट्रल एडवाइजरी बोर्ड ऑफ एजुकेशन" के सन् 1935 के प्रस्ताव का पालन करते हुए, सन् 1936 में दो विशेषज्ञ सलाहाकारों – श्री अबॉट तथा वुड को सरकार द्वारा आमंत्रित किया गया ताकि वे सरकार को व्यावसायिक शिक्षा की समस्याओं पर सलाह दे सकें। अबॉट तथा वुड की इस विशेषज्ञ समिति ने अपनी रिपोर्ट सन् 1937 में प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में व्यावसायिक संस्थाओं का एक पूर्ण व्युत्क्रम सुझाया गया जो उन संस्थाओं के समानांतर था जो सामान्य शिक्षा प्रदान करते हैं। इन संस्तुतियों के परिणामस्वरूप एक नए प्रकार की तकनीकी शिक्षा संस्था का उदय हुआ जिसे पॉलिटैक्नीक का नाम दिया गया। कई राज्यों में पॉलिटैक्नीक में तकनीकी, व्यापारिक या कृषि संबंधी हाई स्कूल आरंभ किए जो ग़ैर–साहित्यिक शिक्षा प्रदान करने लगे।

1.3.9 ज़ाकिर हुसैन समिति प्रतिवेदन

वार्धा स्कीम–1937 (बेसिक शिक्षा): सन् 1937 में जब सात प्रांतों में देशी (मूल भारतीय) निवासियों के प्रतिनिधियों के साथ प्रांतीय सरकारें बनाई गई तो उन्होंने अपना ध्यान शैक्षिक सुधारों पर दिया। अक्तूबर 1937 में वार्धा में एक अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में महात्मा गाँधी द्वारा सुझाया गया यह प्रस्ताव पारित किया गया कि राष्ट्रीय स्तर पर सभी बच्चों को 7 वर्ष तक निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से दी जाए जिसमें शैक्षिक प्रक्रिया इस समस्त अवधि में हाथ से किए जाने वाले उत्पादक कार्य के गिर्द केन्द्रित हो। विकसित की जाने वाली सभी योग्यताएँ या प्रशिक्षण, जहाँ तक संभव हो, बच्चे के परिवेश में से चुने गए किसी केन्द्रीय हस्तशिल्प के साथ समग्र रूप से संबंधित की जाए। सम्मेलन की यह अपेक्षा थी कि यह प्रणाली आत्मनिर्भर होगी और अन्ततोगत्वा अध्यापकों के वेतन की पूर्ति भी कर देगी। तदनुसार, डॉ ज़ाकिर हुसैन की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति ने अपनी प्रथम व्यापक राष्ट्रीय शिक्षा स्कीम तैयार कर इसकी रिपोर्ट 2 दिसम्बर, 1937 को प्रस्तुत

की। इस स्कीम को वार्धा स्कीम या बेसिक शिक्षा के नाम से जाना गया। इस स्कीम के मुख्य लक्षण निम्नलिखित थे।

i) संपूर्ण शिक्षा किसी बेसिक क्राफ्ट (शिल्प) के साथ किसी उद्योग अथवा व्यवसाय को शिक्षा का केन्द्र मानते हुए दी जाए। इसका आशय सामान्य शिक्षा के साथ किसी शिल्प कला का अध्यापन नहीं है अपितु शिक्षा को किसी बेसिक शिल्पकला से समेकित करते हुए समवाय विधि द्वारा पढ़ाना है। इसे कार्य–आधारित शिक्षा कहते हैं।

ii) शिक्षा इस सीमा तक आत्मनिर्भर या स्वावलंबी होनी चाहिए कि जिससे अध्यापकों का वेतन भी दिया जा सके। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों अपनी शिक्षापूर्ण करने पश्चात स्वावलंबी बनाना था।

iii) प्रत्येक विद्यार्थी को जीवन में हाथ द्वारा किए गए कार्य से कमाना सीखना चाहिए। यही कारण है कि शारीरिक कार्य पर बल दिया गया है। यह शिक्षा अहिंसात्मक भी होगी क्योंकि इसमें कोई व्यक्ति किसी दूसरे की जीविका नहीं छीनता है।

iv) अधिगम का संबंध (समन्वय) गहन रूप से घर, समुदाय तथा बच्चे के जीवन–आधारित क्रियाकलाप से किया गया है। इसके अतिरिक्त कुटीर उद्योगों तथा व्यवसायों से भी इस दर्शन का शैक्षिक नीतियों और विशेषतः प्रारम्भिक शिक्षा तथा निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि इसे भारत के संविधान में भी स्थान मिल गया।

उपयुक्त प्रशिक्षण के लिए पूर्ण प्रावधान करनाः इसमें शारीरिक तथा मानसिक रूप से विकलांग बच्चों की शिक्षा का प्रबंध करना, अनिवार्य शारीरिक शिक्षा की व्यवस्था करना, सामाजिक तथा मनोरंजन संबंधी क्रियाकलाप का प्रावधान, तथा केन्द्र और प्रांतों में शिक्षा विभाग का गठन सम्मिलित है।

1.3.10 सार्जेंट रिपोर्ट

सार्जेट रिपोर्ट पहली ऐसी व्यापक स्कीम थी जिसमें शिक्षा के सभी स्तर तथा पक्ष–पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक, हाई स्कूल तथा विश्वविद्यालयी शिक्षा तथा साथ–साथ तकनीकी, व्यावसायिक तथा सांवृत्तिक शिक्षा सम्मिलित थी। अध्यापन संवृत्ति को यथेष्ट महत्व दिया गया। अध्यापकों के वेतन तथा सेवा शर्तों में सुधार भी सुझाए गए। रिपोर्ट में उत्पाद शिक्षा पर बल दिया गया। देश की बेरोजगारी समस्या पर गहन विचार किया गया और माना गया कि शिक्षा में ही इसका समाधान निहित है। इन संस्तुतियों ने स्वतंत्र भारत की शिक्षा के लिए एक ठोस आधार प्रस्तुत किया।

1.4 सारांश

यह इकाई इस पाठ्यक्रम की, जिसका शीर्षक हैं **भारत में प्रारंभिक शिक्षाः एक सामाजिक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य,** प्रथम इकाई है। इस इकाई में प्राचीन भारतीय शिक्षा

टिप्पणी

प्रणाली से लेकर स्वतंत्राता पूर्व तक की भारतीय शिक्षा के विकास का चित्राण करने का प्रयास किया गया है। इसक इकाई में वैदिक काल मे प्रचलित शैक्षिक प्रविधियों का संक्षिप्त वर्णन दिया गया है उस समय में शिक्षा को बहुत महत्व दिया जाया करता था। और ज्ञान को व्यक्ति का तीसरा नेत्रा समझा जाता था। शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य निंसदेह वासनाओं तथा तृष्णाओ से मुक्ति पाना था। सांसारिक कामकाजों के संपादन में व्यक्ति की कुशलता को बढ़ाने के अतिरिक्त ज्ञान का उद्देश्य पांडित्य प्राप्त करना स्वंय तथा बाह्य विश्व की समझना भी था। आध्यात्मिकता, चरित्रा निर्माण संस्कृति का सृजन, परिरक्षण तथा प्रसारण भी शिक्षा के उद्देश्यों में सम्मिलित था। उस समय शिक्षा गुरु कुल पद्ति में दी जाती थी। ये गुरुकुल बस्तियों से थोड़ा दूर स्थापित थे। गुरु की दृष्टि में सभी शिष्य समान होते थे। चाहे उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा कैसी भी क्यों न हो। गुरु समाज में एक अति सम्मानीय व्यक्ति समझा जाता था। वह अपने विद्यार्थियों की शिक्षा का संरक्षक था। अध्यापम प्रायः मौखिक रूप में, चर्चाओं, वाद विवाद, वार्तालाप सुनाकर दिया जाता था।

यह गुरु कुल प्रणाली मध्य काल में भी कुछ परिवर्तनों के साथ चलती रही। गुरु कुल के अतिरिक्त मुसलमान विद्यार्थियों के लिए मस्जिदों में मकतब तथा मदर से खोले गए। जहां मुल्ला और मोलवी उन्हे पद्ति थी। यह उनके लिए इस्लामिक धर्म की शिक्षा होती थी। मध्य काल के अन्तिम समय में विदेशों से कुछ मिशनरी भारत आए और उन्होंने बेसिक शिक्षा का प्रचार प्रसार करना आरंभ किया। चर्चो मे यह शिक्षा अंग्रेजी के माध्यम से दी जानी थी परंतु कुछ मंदिरों मे संस्कृत के माध्यम से और मदरसों में फारसी भाषा में दी जाने लगी। यह सिलसिला जब तक चलता रहा जब तक ईस्ट इंडिया कम्पनी का स्थापना नही हुई और बरतानिया शासन इस में सम्मिलित नही हुआ।

तथापि भारत में वर्तमान शिक्षा पद्धति का श्रीगणेश मकॉले के मिनटों के आधार पर हुआ जो 1835 में लाड मकॉल ने ब्रिटिश संसद को भेजे और जिन्हे उस समय के वाइसाय लार्ड बैंटिक ने स्वीकार किया। मकॉले ने अंग्रेजी की तुलना में भारतीय भाषाओं को सिरे से नकार दिया। यद्यपि मकॉले भारत में मात्रा लगभग चार वर्ष के लिए रहा परंतु उसके द्वारा दी गई शिक्षा प्रणाली ने भारत और भारतीयों पर ऐसी छाप छोड़ी जिसका प्रभाव लाखों भारतीयों पर सदैव के लिए रहा।

इसके पश्पात् इस इकाई में बुड्स डिस्पैच (1853) पर भी चर्चा की गई हे जिसके माध्यम से भारतीय शिक्षा को प्रणाली बंद किया गया और एक व्यवस्थित संरचना प्रदान की गई। वुड का डिस्पैच एक व्यापक और महत्वपूर्ण प्रलेख है जिस का भारतीय शिक्षा के इतिहार में एक अनुपम स्थान है। इसके पश्चात् इकाई में हंटर आयोग की अनुशंसाओं पर चर्चा की गई है जिसमें शिक्षा के व्यवसायीकरण पर प्रकाश डाला गया है जो इस आयोग का भारतीय शिक्षा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान समझा जाता है। इसमें पश्चात् 1902 के विश्वविद्यालयों से लिए बने आयोग का जिक्र है। इस आयोग की सिफारशों के आधार पर माध्यामिक शिक्षा को विश्वविद्यालयों के नियंत्राण मे लाया गया था। फिर इस इकाई में हार्टग समिति तथा सप्रु तथा अब्बॉट–वुड प्रतिवेदन पर प्रकाश डाला गया है और तत्पश्पात् जाकिर हुसैन समिति की रिपोट (वार्धा स्कीम) पर भी थोड़ा प्रकाश डाला गया है। सार्जेन्ट समिति जिस

टिप्पणी

का संबंध प्रारंभिक शिक्षा के सार्विकीकरण से है, पर भी चर्चा की गई है। यह देखना काफी रोचक होगा कि सारजैंट रिपोट एक ऐसी व्यापक स्कीम थी जिस में शिक्षा के सभी पक्षों पर चर्चा की गई है। इन संस्तुतियों ने स्वतंत्रा भारत की शिक्षा के लिए सोचने का एक मार्ग प्रशस्त किया है।

1.5 संदर्भ ग्रंथ/कुछ उपयोगी पुस्तकें

(1) Altekar, A. S.(1951) Education in Ancient India, Nand Kishore & Bros, Educational Publishers(Fourth Edition), Banaras

(2) Govt. of India (1965) Minute by the Hon'ble T. B. Macaulay, dated the 2nd February 835: Bureau of Education. Selections from Educational Records, Part I (1781-1839). Edited by H.Sharp. Calcutta: Superintendent, Government Printing, 1920 (Reprint). Delhi: National Archives of India, 1965, 107-117.

(3) Macaulay's Minute, 1835. Ibid, (p.10)

(4) Macaulay's Minute, 1835. Ibid, (p.12)

(5) Macaulay's Minute, 1835, Ibid, (p.24)

(7) Macaulay's Minute, 1835, Ibid, (p.34)

(8) Education Commissions and Committees in Retrospect, http://www.education.nic.in/cd50years/g/W/16/0W160301.htm (Retrieved on 15.08.2011).

(9) Report of the University Education Commission, (Radhakrishnan Commission), 1948-49, Vol. I, PP. 20-21. See also Report of the Secondary Education Commission, (Mudliyar Commission), 1952, p. 11.

(10) Report of the University Education Commission, Vol. I, op. cit., pp. 22-23 and Report of the Secondary Education Commission, op. cit., pp. 11-13. See also

(11) Mukherji, S. N. (1966): **History of Education in India** (pp. 167-68.)

(12) Mukherji, op. cit., (pp. 187-189)

(13) Ibid., (pp. 13-14)

(14) Report of the Secondary Education, Commission, op. cit. (pp. 14-15)

(15) Nurullah Syed and Naik J.P.(1951): "A History of Education in India," Macmillan, Bombay.

(16) Chaube, S.P., "History of Indian Education, "Vinod Pustak Mandir, Agra, 2005.

(17) Wardha Education Scheme, 1937 http://www.education.nic.in/cd50years/g/52/4U/524U0101.htm

(18) The Sargent Report (1944) in Ram Nath Sharma, Rajendra Kumar Sharma (1996), *History Of Education In India*, Atlantic Publishers & Distributors, ISBN 8171565999, http://books.google.com/?id=yqtAAgS3NSEC

(19) http://en.wikipedia.org/wiki/MagnaCarta

1.6 अन्त्य इकाई अभ्यास

1) एक सांवृत्तिक (व्यावसायिक) अध्यापक के रूप में आप, प्राचीन काल के गुरु का कौन–सा गुण स्वीकार करना चाहेंगे? क्यों? कोई तीन युक्तियुक्त कारण बताएँ।

2) एक नए प्रारम्भिक विद्यालय की आवश्यकता का मूल्यांकन करने हेतु आप अपने इलाके का सर्वेक्षण कीजिए। मालूम करें कि अधिकांश माता–पिता किस प्रकार के विद्यालय को प्राथमिकता देते हैं। उनकी प्राथमिकता के संभावित कारणों को भी मालूम करें। ऐसा विद्यालय स्थापित करने के लिए उठाए जा सकने वाले पगों का सुझाव दें।

इकाई 2 भारतीय शिक्षा प्रणाली–II

संरचना

2.0 प्रस्तावना

2.1 अधिगम उद्देश्य

2.2 स्वतंत्र भारत में गठित शिक्षा आयोगों/समितियों की संस्तुतियाँ

- 2.2.1 राधा कृष्णन आयोग (1948–49)
- 2.2.2 मुदालियर आयोग (1952)
- 2.2.3 महिला शिक्षा पर राष्ट्रीय समिति (दुर्गाबाई देशमुख समिति) (1958)
- 2.2.4 कोठारी आयोग (1964–66)
- 2.2.5 यशपाल समिति (1992)

2.3 राष्ट्रीय शिक्षा नीतियाँ

- 2.3.1 राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986
- 2.3.2 राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1992
- 2.3.3 प्रारम्भिक शिक्षा के सरोकार

2.4 आठ वर्षीय प्रारम्भिक शिक्षा प्रणाली की संरचना

2.5 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एन.सी.एफ.)

- 2.5.1 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एन.सी.एफ.) 2005
- 2.5.2 प्रारम्भिक विद्यालयी पाठ्यचर्या के लिए निहितार्थ

2.6 सारांश

2.7 संदर्भ ग्रंथ/कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.8 अन्त्य – इकाई अभ्यास

2.0 प्रस्तावना

प्रथम इकाई में हमने प्राचीन भारत में शिक्षा की अवधारणा तथा प्रक्रिया (व्यवसाय) एवं गुरु (अध्यापक) की अवधारणा, विशेषताएँ और उत्तरदायित्वों के विषय में चर्चा की। हमने यह भी जाना कि भारत के स्वतंत्रता पूर्व काल में शिक्षा का विकास कैसे हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्, स्वतंत्र राष्ट्र की प्रथम प्राथमिकता थी देश के लिए एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का

टिप्पणी

परिरूप तैयार करना जो उसकी आवश्यकताओं पर खरा उतरे। 26 जनवरी 1950 से स्वतंत्र भारत का अपना संविधान लागू हुआं। संविधान के अनुच्छेद 45 में प्रावधान रखा गया कि "यह सरकार का दायित्व होगा कि संविधान के लागू होने के 10 वर्ष के अंदर देश के सभी बच्चों को जब तक वे 14 वर्ष के नहीं हो जाते निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाएगी।

इस इकाई में हम उन विभिन्न आयोगों तथा समितियों का अध्ययन करेंगे जिनकी नियुक्ति भारत सरकार ने शिक्षा के विभिन्न पक्षों पर विचार करने, और शैक्षिक सुविधाओं को सुधारने के लिए उपयुक्त संस्तुतियों करने और भारत में एक प्रभावी शिक्षा प्रणाली की स्थापना करने के लिए की। इनमें से कुछ मुख्य आयोगों/समितियों को नीचे दिए गए आरेख। में दर्शाया गया है।

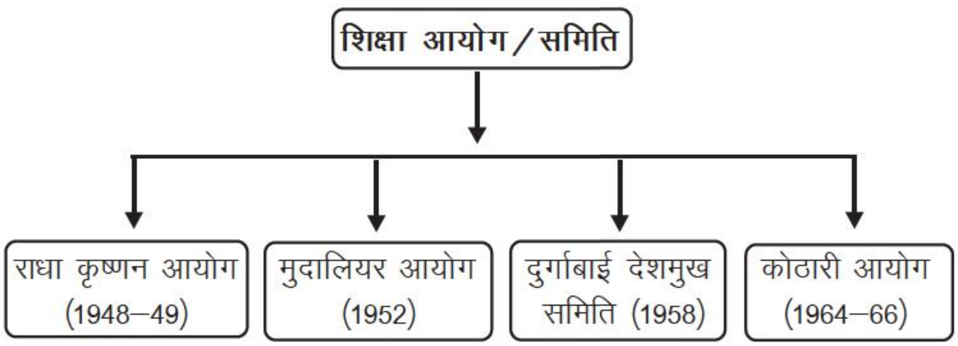

आरेख 1: *स्वतंत्र भारत में बनाए गए मुख्य शिक्षा आयोग/समितियाँ*

आप अनुभव करेंगे कि इन आयोगों/समितियों द्वारा दी गई संस्तुतियों का आधुनिक भारत में शैक्षिक नीतियों, ढाँचे तथा शैक्षिक विकास पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। इस इकाई में भारतीय शिक्षा, तथा विशेषकर प्रारम्भिक शिक्षा की समीक्षा की गई है। समय–समय पर भारत सरकार ने शिक्षा की स्थिति, विशेषकर प्रारम्भिक शिक्षा की स्थिति का पुनर्रीक्षण किया। उदाहरणार्थ, 1968, 1986 तथा 1992 और सबसे बाद में सन् 2005 में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (National Curriculum Framework - NCF) बनाई गई। इन नीतियों का प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार–प्रसार पर बड़ा हितकारी प्रभाव पड़ा। इस इकाई में हम इन नीतियों का पुनर्रीक्षण भी करेंगे।

2.1 अधिगम उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप:

- विभिन्न शिक्षा आयोगों के ऐतिहासिक महत्व का विश्लेषण कर सकेंगे;
- कोठारी आयोग द्वारा दी गई संस्तुतियों की विशिष्ट प्रकृति की व्याख्या कर सकेंगे;
- विभिन्न शिक्षा आयोगों द्वारा अनुशंसित कार्यक्रमों की क्षमताओं की जाँच कर सकेंगे;

- वर्तमान शिक्षा नीति के विशेष लक्षणों को व्यक्त कर सकेंगे तथा उन की व्याख्या कर सकेंगे;
- विभिन्न शिक्षा नीतियों द्वारा निर्धारित विभिन्न शैक्षिक लक्ष्यों की उनके औचित्य की दृष्टि से जाँच कर सकेंगे;
- राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों के योगदान तथा सार्विक प्रारम्भिक शिक्षा पर उनके प्रभाव की जाँच कर सकेंगे;
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (National Curriculum Framework - NCF) 2005 का मूल्यांकन कर सकेंगे;
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2005 के निहितार्थों की व्याख्या कर सकेंगे तथा इस पर आधारित कार्यनीति के सुझाव दे सकेंगे; तथा
- 8 वर्षीय प्रारम्भिक शिक्षा (5 वर्ष प्राथमिक तथा 3 वर्ष उच्च प्राथमिक) की संरचना की समालोचनात्मक जाँच कर सकेंगे।

2.2 स्वतंत्र भारत में गठित शिक्षा आयोगों / समितियों की संस्तुतियाँ

भारत में ऐसे बहुत सारे शिक्षा आयोग / समितियाँ गठित की गई जिन्होंने विभिन्न स्तरों पर शिक्षा के विकास पर विचार किया। उनमें नीचे दिए गए कुछ आयोग / समितियाँ हैं जिनका शिक्षा के विकास पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा।

- राधा कृष्णन आयोग (1948–49)
- मुदालियर आयोग (1952)
- महिला शिक्षा पर राष्ट्रीय समिति (1958)
- कोठारी आयोग (1964–66)
- यशपाल समिति

2.2.1 राधा कृष्णन आयोग (1948–49)

राधा कृष्णन आयोग वास्तव में विश्वविद्यालय आयोग था जिसका गठन भारत सरकार ने 1948 में डॉ. एस राधा कृष्णन की अध्यक्षता में किया था तथा जिसका मुख्य सरोकार विश्वविद्यालयी शिक्षा की समस्याओं पर विचार करना था। यह इसलिए किया गया क्योंकि स्वतंत्र भारत को राष्ट्रीय विकास के लिए विभिन्न क्षेत्रों में युवा नेतृत्व की आवश्यकता थी और यह अपेक्षित था कि यह नेतृत्व शिक्षित नवयुवकों से प्राप्त होगा।

राधा कृष्णन आयोग ने विश्वविद्यालयी शिक्षा तथा शोध के लक्ष्यों और उद्देश्यों में अनिवार्य

टिप्पणी

तथा वांछनीय परिवर्तनों संबंधी महत्वपूर्ण अनुशंसा की। इन अनुशंसाओं का संबंध विश्वविद्यालय के संघटन (बनावट), नियंत्रण, कार्यों तथा कार्यक्षेत्र से था, केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के उनके संबंधों से, वित्त व प्रवेश संबंधी मानकों को जारी रखने से था। इसके अतिरिक्त अध्यापन से, परीक्षाओं से, पाठ्यचर्याओं तथा इनकी अवधि से (अध्ययन अवधि) अनुचित भेदभाव से, शिक्षा के माध्यम से तथा भारतीय संस्कृति, इतिहास, साहित्य, भाषाओं, दर्शन, ललित कलाओं के संदर्भ में उच्च अध्ययन के प्रावधानों से भी था। देश में उच्च शिक्षा के समन्वयन के लिए इस आयोग ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission – UGC) के गठन की सिफारिश की, जिसकी स्थापना तत्काल कर दी गई। इन अनुशंसाओं को स्वीकार किया गया तथा कार्यान्वित भी कर दिया गया, जिसके फलस्वरूप देश में उच्च शिक्षा को एक दिशा मिली।

यद्यपि, इन अनुशंसाओं का प्रारम्भिक शिक्षा से कोई सीधा संबंध नहीं है, तथापि इनका प्रारम्भिक शिक्षा के संदर्भ में उसके दर्शन तथा निर्णयन प्रक्रिया से अवश्य है क्योंकि प्रारम्भिक शिक्षा माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के लिए आधार अवस्था का काम करती है।

2.2.2 मुदालियर आयोग (1952)

मुदालियर आयोग वास्तव में माध्यमिक शिक्षा आयोग था जिसका गठन भारत सरकार ने सन् 1952 में किया। डॉ. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर इस आयोग के अध्यक्ष थे। इस आयोग का उद्देश्य देश में प्रचलित माध्यमिक शिक्षा की जाँच करना तथा माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यों, संगठन, इसका प्राथमिक और उच्च शिक्षा से संबंध एवं विभिन्न प्रकार के माध्यमिक विद्यालयों के सहसंबंध के संदर्भ में माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन तथा संशोधन के लिए उपाय सुझाना था।

मुदालियर आयोग ने अध्यापकों की समस्याओं तथा अध्यापक शिक्षा के कार्यक्रमों का विश्लेषण भी किया और संस्तुति की कि अध्यापक शिक्षा की दो प्रकार की संस्थाएँ होनी चाहिए:

1) एक अलग बोर्ड के अधीन प्राथमिक अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाएँ जिनका उद्देश्य उन सभी अभ्यर्थियों को प्रशिक्षित करना था जिन्होंने एस.एल.सी. (मैट्रीकुलेशन) या हायर सैंकेडरी कक्षा उत्तीर्ण की हो। यह कार्यक्रम 2 वर्ष का होगा।

2) माध्यमिक अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाएँ जो विश्वविद्यालयों से मान्यता प्राप्त तथा संबद्ध होंगी और जिनका उद्देश्य स्नातकों को एक साल की अवधि के लिए प्रशिक्षित करना था।

अध्यापक प्रशिक्षार्थियों से अपेक्षा थी कि वे एक या अधिक पाठ्यक्रमेतर क्रियाकलाप में प्रशिक्षण प्राप्त करेंगे। प्रशिक्षण महाविद्यालयों से भी अपेक्षित था कि वे अपने सामान्य कार्य के रूप में रिफ्रैशर पाठ्यक्रमों, विशेष विषयों में लघु/गहन पाठ्यक्रमों, वर्कशाप के द्वारा प्रायोगिक प्रशिक्षणों तथा व्यावसायिक (सांवृत्तिक) कांफ्रैंसों का आयोजन करेंगे।

यह भी अपेक्षा थी कि प्रशिक्षण महाविद्यालय शिक्षण शास्त्र के प्रत्येक महत्वपूर्ण पक्षों पर शोध कार्य भी करेंगे और इसके लिए प्रत्येक महाविद्यालय के साथ एक प्रायोगिक विद्यालय जोड़ा जाएगा। आयोग ने आवासीय सुविधाओं सहित निःशुल्क प्रशिक्षण की जबरदस्त सिफारिश की।

इन अनुशंसाओं के अध्यापक प्रशिक्षण, विशेषकर सेवारत अध्यापकों के लिए दूरगामी हितकारी प्रभाव पड़े।

2.2.3 महिला शिक्षा पर राष्ट्रीय समिति (दुर्गाबाई देशमुख समिति) (1958)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् महिलाओं तथा लड़कियों (जो लगभग भारत की आधी जनसंख्या के समान थी) की समस्याएँ एक प्राथमिकता बनी। परंतु जैसे आपने पढ़ा होगा, परंपरागत रूप से भारत में लड़कियों की शिक्षा को प्रायः निम्न प्राथमिकता दी जाती रही। जुलाई, 1957 में योजना आयोग के शिक्षा संबंधी चयन पैनल ने सिफारिश की कि "प्रारम्भिक, माध्यमिक, तथा प्रौढ़ स्तरों पर लड़कियों की शिक्षा की प्रकृति से संबंधित प्रश्न के विभिन्न पक्षों की जाँच करने और यह मालूम करने की कि क्या वर्तमान शिक्षा प्रणाली उन्हें एक खुश तथा अर्थपूर्ण जीवन व्यतीत करने में सहायक है अथवा नहीं, एक उपयुक्त समिति का गठन किया जाए।" सन् 1957 में आयोजित राज्यों के शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन में यह सुझाव आया कि महिलाओं की शिक्षा से जुड़े संपूर्ण प्रश्न की जाँच करने के लिए एक विशेष समिति का गठन किया जाए।

तदनुसार, भारत सरकार ने मई 1958 में महिलाओं की शिक्षा पर एक राष्ट्रीय समिति का गठन किया जिसकी अध्यक्षा श्रीमती. दुर्गाबाई देशमुख को बनाया गया। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट, जो सन् 1958 में प्रकाशित हुई, अनुशंसा की कि लड़के और लड़कियों की शिक्षा में समानता लाने को उच्चतम प्राथमिकता दी जानी चाहिए और केन्द्र और राज्यों द्वारा इस समस्या का सामना करने के लिए एक साहसिक तथा दृढ़ संकल्पित, निश्चित प्रयास करना चाहिए। इस समिति ने मिडिल स्कूल स्तर पर सहशिक्षा की सिफारिश की परंतु हाई स्कूल स्तर पर लड़कियों के लिए ऐसे अलग विद्यालय स्थापित करने की संस्तुति की जहाँ पर लड़कियों के लिए उपयुक्त तथा और अधिक विविध पाठ्यचर्याओं का प्रावधान हो। समिति ने यह इच्छा भी व्यक्त की कि माताओं, क्रेच (शिशु सदन), महिला अध्यापकों के प्रशिक्षण तथा प्रौढ़ महिलाओं के लिए रोजगारी सुविधाओं का उपयुक्त प्रावधान किया जाना चाहिए। इसके फलस्वरूप नीति में तथा व्यवहार (कार्यान्वयन) में बहुत सारे प्रावधान किए गए ताकि विशेषकर प्रारम्भिक स्तर पर लड़कियों की शिक्षा पर महिला अध्यापकों को प्रोत्साहन मिल सकें।

2.2.4 कोठारी आयोग (1964–66)

विभिन्न समितियों एवं आयोगों की अनुशंसाओं तथा शिक्षा में परिवर्तन लाने के लिए किए गए सतत् प्रयासों के बावजूद भारत सरकार देश में शिक्षा की प्रगति से बहुत खुश नहीं थी।

ऐसा अनुभव किया जा रहा था कि एक ऐसी व्यापक शिक्षा नीति का निर्माण किया जाए जिसमें शिक्षा के सभी पक्ष व क्षेत्र सम्मिलित हो जाए। अतः सन् 1964 में भारत सरकार ने डॉ. डी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग का गठन किया जिसका उद्देश्य शिक्षा के विकास में सभी स्तरों व पक्षों के लिए सामान्य सिद्धांत व नीतियाँ तथा शिक्षा की राष्ट्रीय रूपरेखा पर सरकार को सलाह देना था।

विभिन्न शैक्षिक क्षेत्रों के लिए, जैसे विद्यालयी शिक्षा, उच्च शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, कृषि शिक्षा इत्यादि सात टॉस्क फोर्सें (कार्य बलों) का निर्माण किया और विभिन्न विशिष्ट समस्याओं के व्यापक अध्ययन के लिए तथा रिपोर्ट तैयार करने के लिए सात कार्य समूहों का निर्माण किया गया। कार्य बलों तथा कार्य समूहों की रिपोर्टों के आधार पर आयोग ने कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों की विस्तार से तथा गहन रूप में जाँच की।

आयोग की नज़र में शिक्षा सामाजिक पुनर्निर्माण का, राष्ट्र निर्माण का तथा विकास में सरकार के साथ लोगों की साझेदारी के विषय में अवगत कराने का एक मुख्य साधन होती है। आयोग की यह इच्छा थी कि लोगों को राष्ट्रीय विकास में भागीदार बनना चाहिए। इस आयोग की रिपोर्ट का यही आधार रहा है। आयोग के विचार में शिक्षा के लक्ष्य तथा उन्हें साकार करने के लिए निम्नलिखित संस्तुतियाँ की गई हैं:

1) **उत्पादकता वृद्धि के लिए शिक्षा**

   क) विज्ञान को शिक्षा और संस्कृति का मुख्य घटक बनाना

   ख) सामाजिक रूप से सामान्य शिक्षा के एक अभिन्न भाग के रूप में रखना

   ग) उद्योग तथा कृषि की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए शिक्षा का व्यवसायीकरण

   घ) विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिक शोध तथा शिक्षा में सुधार लाना।

2) **आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को त्वरित करने के लिए शिक्षा**

   क) अध्यापन की नई विधियों को अपनाना

   ख) वांछनीय अभिवृत्तियों, मूल्यों तथा स्वाध्याय जैसे अनिवार्य कौशलों को विकसित करना

   ग) समाज के सभी वर्गों के व्यक्तियों को शिक्षित करना

   घ) देश में उत्कृष्टतायुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना

3) **सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता के प्रोत्साहन के लिए शिक्षाः**

   क) सार्वजनिक शिक्षा की सामूहिक विद्यालय प्रणाली लागू करना

   ख) सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास

   ग) हिंदी को तेज़ी से समृद्ध करने के प्रयास

   घ) विद्यार्थियों को सामुदायिक जीवन में भागीदारी के लिए प्रोत्साहित करना तथा सक्षम बनाना

टिप्पणी

4) **राष्ट्रीय मूल्य के अंतर्वेशन (Inclusion) के लिए शिक्षा**

क) नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक मूल्य को सन्निविष्ट करना

ख) ऐसी पाठ्यचर्या का निर्माण करना जिसमें विश्व के धर्मों के विषय में जानकारी हो;

ग) मौन ध्यान के लिए विद्यार्थियों को समूह में बैठने के लिए प्रोत्साहित करना

घ) विद्यार्थियों के समक्ष सामाजिक न्याय व समाज सेवा के उच्च आदर्श प्रस्तुत करना

कोठारी आयोग रिपोर्ट भारतीय शिक्षा की एक पांडित्यपूर्ण समीक्षा है, और आज भी अर्ध शताब्दी बीत जाने पर भारतीय इतिहास में प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा का सर्वाधिक गहन अध्ययन समझा जाता है।

आयोग ने एक सार्वजनिक शिक्षा की एक सामूहिक विद्यालय प्रणाली का समर्थन किया जिसमें जाति, धर्म या सामाजिक स्थिति के आधार पर बिना किसी पक्षपात के सभी को निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा देने का प्रावधान है। इस आयोग ने सामूहिक विद्यालय प्रणाली को कार्यान्वित करने के लिए कुछ आवश्यक उपाय सुझाए, जो नीचे दिए जा रहे हैं:

- गुणवत्ता शिक्षा देने के लिए अपेक्षित आधारिक ढाँचा निर्मित करने के लिए प्रारम्भिक शिक्षा वर्धित राष्ट्रीय लागत का प्रावधान करना जिससे सरकारी, स्थानीय तथा सहायता प्राप्त विद्यालयों को सही रूप में नेबरहुड (प्रतिवासी) विद्यालयों में रूपांतरित किया जा सके।
- प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा के माध्यम से सभी को निःशुल्क शिक्षा, माध्यमिक स्तर पर क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षा देना और यदि कोई सहायता प्राप्त विद्यालय मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में शिक्षा देता पाया जाए तो उसकी राजकीय सहायता बंद कर देना।
- सामूहिक विद्यालय प्रणाली को 10 वर्ष की अवधि में पाक्षिक रूप से लागू करना और प्रारम्भिक चयन प्रक्रियाओं, ट्यूशन शुल्क, कैपिटेशन शुल्क आदि समस्याओं से निपटने के लिए अनिवार्य न्यूनतम कानून बनाना।
- गुणवत्ता अध्यापक शिक्षा निम्नलिखित के माध्यम से:
  - मूल अवधारणाओं को समझने के लिए विषयवस्तु पाठ्यक्रम
  - सामान्य/व्यावसायिक शिक्षा के लिए समेकित पाठ्यक्रम
  - पुनश्चर्या व्यावसायिक अध्ययन तथा शोध करना
  - आयोग और मूल्यांकन की प्रभावी विधियाँ
  - इंटर्नशिप कार्यक्रम के एक भाग के रूप में अध्यापन अभ्यास

- शिक्षा के सभी स्तरों के लिए अध्यापक शिक्षा को संशोधित करना ताकि वह उपयुक्त हो जाए।

पिछले 50 वर्षों से भारत इस दिशा में कार्यरत है परंतु अभी तक पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई है। निश्चित रूप से सुधार की यह प्रक्रिया थोड़ी धीमी है।

2.2.5 यशपाल समिति (1992)

सन् 1992 में भारत सरकार ने प्रो. यशपाल की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय सलाहकार समिति का गठन किया जिसका कार्य विद्यालयी बच्चों पर से शैक्षिक बोझ को कम करने के उपाय सुझाना था। पाठ्यचर्यात्मक बोझ का पूर्ण रूप से अध्ययन करने के पश्चात् यशपाल समिति ने यह निष्कर्ष निकाला कि विद्यालयी बच्चों पर बोझ की समस्या मात्र इसलिए उत्पन्न नहीं हो कि विद्यालय की पाठ्यचर्या परिरूप (design) त्रुटिपूर्ण है या अध्याय कम सक्षम हैं या विद्यालयी प्रशासन कमजोर है या पाठ्यपुस्तकें उपयुक्त नहीं है, अपितु बोझ की समस्या इसलिए भी है कि हम वास्तविक योग्यता/सक्षमता के विकास की तुलना में बच्चों की अर्हताओं या डिग्रियों को अधिक महत्व देते हैं। इसका संबंध ज्ञान विस्फोट (knowledge explosion) तथा "पकड़ लेना" (catching up) संलक्षण से है।

समिति का यह विचार रहा है कि पाठ्यचर्या निर्माण तथा पाठ्यपुस्तकों के तैयार करने का इस प्रकार विकेन्द्रीकरण कर दिया जाए ताकि इस प्रक्रिया में अधिक अध्यापक, एजुकेटर तथा विशेषज्ञ अधिक स्वायत्तता के साथ सम्मिलित हो सकें। वैज्ञानिकों और विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों को पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में परामर्शदाता के रूप में सम्मिलित किया जाना चाहिए न कि पुस्तक लेखक के रूप में।

समिति ने प्रतिस्पर्धाओं तथा व्यक्तिगत उपलब्धियों को पुरस्कृत करने को हतोत्साहित किया क्योंकि इनके कारण बच्चे हर्षित या आनंदपूर्ण अधिगम से वंचित रह जाते हैं। इसके विपरीत समिति ने सहयोग, सामूहिक क्रियाकलाप तथा सामूहिक उपलब्धियों को प्रोत्साहित करने की सिफारिश की क्योंकि इनसे विद्यालयों में सहयोगात्मक अधिगम को बढ़ावा मिलता है। पूर्व बाल्यावस्था शैक्षिक संस्थाओं में प्रवेश के लिए कोई परीक्षा अथवा साक्षात्कार नहीं होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त समिति का दृढ़ मत था कि बच्चों को प्रतिदिन विद्यालय में बहुत भारी बस्ता लाने के लिए विवश नहीं किया जाना चाहिए। पाठ्यपुस्तकों को विद्यालय की सम्पत्ति समझना चाहिए अतः बच्चों को व्यक्तिगत पुस्तकें खरीदने की कोई आवश्यकता नहीं होनी चाहिए और न ही वे प्रतिदिन पुस्तकों को घर पर ले जाए। समिति का विचार था कि प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों को गृह कार्य के बोझ के तले नहीं दबाना चाहिए, सिवा इसके कि वे घर के इर्द गिर्द के वातावरण का अन्वेषण या पर्यवेक्षण करते रहे। उच्च प्राथमिक और माध्यमिक कक्षाओं में गृहकार्य जहाँ भी अनिवार्य हो ग़ैर–पाठ्यपुस्तकीय होना चाहिए और यदि घर पर कार्य के लिए पाठ्यपुस्तकों की आवश्यकता हो तो चक्रीय आधार पर उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

समिति द्वारा यह सुझाव दिया गया कि प्राथमिक कक्षाओं में सभी विषयों में पाठ्यचर्या तथा पाठ्यपुस्तकें अवधारणा–आधारित हो। समिति ने प्राथमिक कक्षाओं के सभी विषयों की पाठ्यपुस्तकें तथा पाठ्यक्रम के विषय में अपनी टिप्पणियाँ दी हैं। इनके अनुसार भाषा संबंधी पाठ्यपुस्तकों में आम प्रयोग में आने वाले मुहावरे प्रतिबिम्बित होने चाहिए और बच्चों की जीवन संबंधी अनुभूतियों, काल्पनिक कहानियों तथा कविताओं और देश के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों के जीवन को प्रतिबिम्बित करने वाली कहानियों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। विज्ञान में प्रयोगीकरण और वास्तविक जीवन अवस्थितियों पर विश्लेषणात्मक चिंतन का प्रावधान हो। सामाजिक विज्ञान पाठ्यचर्या में इतिहास और भूगोल के ज्ञान के अतिरिक्त हमारे सामाजिक–राजनीतिक तथा आर्थिक प्रणालियों के प्रकार्यों का दर्शन व उनकी प्रविधि प्रवर्तित होनी चाहिए ताकि बच्चे सामाजिक आर्थिक विकास की समस्या और प्राथमिकताओं को विश्लेषित कर सकें, उनहें समझ सकें और उन पर चिंतन कर सके। कक्षा **VI-VIII** तक के इतिहास के सिलेबस (पाठ्यविवरण) में स्वतंत्रता संग्राम तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हुए विकास पर बल दिया जाना चाहिए। नागरिक शास्त्र के पाठ्यक्रम को समसामयिक अध्ययन से प्रतिस्थापित कर दिया जाना चाहिए तथा भूगोल के अध्ययन को समसामयिक यथार्थता के साथ जोड़ दिया जाए।

अधिगम की गुणवत्ता को सुधारने की दृष्टि से यशपाल समिति यह चाहती थी कि निजी विद्यालयों को मान्यता प्रदान करने संबंधी मानदंड कठोर होने चाहिए। समिति ने इस विचार की सराहना की कि गाँव, खंड तथा जिला स्तर पर शिक्षा समितियाँ बननी चाहिए जो अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले विद्यालयों की योजना और पर्यवेक्षण का दायित्व ले सकें।

यशपाल समिति ने प्राथमिक शिक्षा के लिए निम्नलिखित गुणवत्ता मानदंडों का सुझाव दिया:

1) विद्यालयी ग्रेडिंग में प्राप्त श्रेणी

2) समाज में प्रतिशतता

3) उपस्थिति (हाज़िरी) प्रतिशतता

4) शिक्षा के गुणवत्ता मानक निम्नलिखित निकर्षों के आधार पर निर्धारित किए जा सकते हैं। अध्यापकों की तैयारी, अध्यापन विधि, शैक्षिक सहायक सामग्री का उपयोग, बच्चों की क्रियाएँ तथा प्रतिभागित्व, विद्यालय की परीक्षाओं में प्राप्त उपलब्धि, कक्षा प्रबंधन, कला, कार्य अनुभव तथा शारीरिक शिक्षा को पढ़ाने की प्रक्रिया, पर्यावरण का अध्ययन, अन्य कार्यकलाप जो बच्चों को विभिन्न अनुभव व अवसर प्रदान करते हैं।

यशपाल समिति ने एक कठोर, पूर्ण, व गहन अध्यापक–शिक्षा कार्यक्रम की सिफारिश की जिससे विद्यालयों में संतोषजनक गुणवत्ता का अधिगम सुनिश्चित हो सके और अध्यापक प्रशिक्षार्थी में स्वःअधिगम और स्वतंत्र चिंतन की योग्यता प्राप्त करने में सहायक हो। इस कार्यक्रम की अवधि स्नातक डिग्री के पश्चात एक वर्ष और सीनियर/हायर सैकेंडरी के पश्चात 3 वर्ष करने की संस्तुति की। इस कार्यक्रम की विषयवस्तु को पुनः संरक्षित किया जाए ताकि विद्यालयी शिक्षा की बदलती हुई आवश्यकताओं के लिए इसका औचित्य सुनिश्चित हो सके और यह प्रैक्टीकम केन्द्रित हो।

टिप्पणी

अध्यापकों के सतत् शिक्षा लक्ष्य को प्राप्त करना तथा अध्यापकों के लिए उत्तम प्रशिक्षण तथा योग्यताओं (अर्हताओं) की व्यवस्था करना इसमें सम्मिलित था। इस नीति के मूल सिद्धांत निम्नलिखित थे:

2.2 राष्ट्रीय शिक्षा नीतियाँ (एनपीई)

आप देखेंगे कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जनमानस के बीच शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न समितियों और आयोगों ने शिक्षा के पुर्ननिर्माण की समस्या का पुनरावलोकन किया। इन आयोगों और समितियों के प्रतिवेदन के आधार पर समय–समय पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाई गई और उसे लागू किया गया। इन नीतियों में शिक्षा के प्रत्येक स्तर, विशेष रूप से प्राथमिक स्तर, शहरी व ग्रामीण भारत जो कि देश का मुख्य मुद्दा था, पर विचार किया गया।

2.3.1 राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968

पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति, शिक्षा आयोग (1964–66) की संस्तुतियों पर आधारित थी। इसकी घोषणा 1968 में की गई और राष्ट्रीय एकता और वृहद सांस्कृतिक तथा आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए 'आमूलचूल पुर्नरचना' और समान शैक्षिक अवसरों की आवश्यकता को महसूस किया गया। नीति ने शैक्षिक विकास का पथ तैयार किया जिसका उद्देश्य 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा के लक्ष्य को पूर्ण करना थाा जैसा कि भारत के संविधान में व्यवस्था की गई थी। साथ ही शिक्षकों के लिए बेहतर प्रशिक्षण व योग्यता प्रदान करना भी इसका उद्देश्य था। नीति के मुख्य बिन्दु में समाहित है :

1) **निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षाः** 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए गंभीर प्रयास करना, विद्यालयों से विद्यमान अपव्यय तथा गतिरोध (stagnation) को कम करना, और यह सुनिश्चित करना कि प्रत्येक बालक जो विद्यालय में प्रवेश पाता है, निर्धारित पाठ्यक्रम को सफलतापूवर्क पूर्ण करता है।

2) **अध्यापकों की स्थिति, पारिश्रमिक तथा शिक्षाः** अध्यापकों को समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान प्रदान करना तथा उनकी शैक्षणिक स्वतंत्रता का संरक्षण करना, पर्याप्त तथा संतोषजनक पारिश्रमिक तथा संतोषजक सेवा शर्तें सुनिश्चित करना तथा अध्यापक शिक्षा और विशेषकर सेवाकालीन अध्यापक शिक्षा पर बल देना।

3) **भाषाओं का विकासः** क्षेत्रीय भाषाओं का विकास, माध्यमिक स्तर पर त्रिभाषा फार्मूला को प्रभावी रूप से कार्यान्वित करना।

4) **शैक्षिक अवसरों का समकरण :** सामाजिक संबद्धता (cohesion) तथा राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहित करने के लिए शैक्षिक अवसरों को सम करना। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्षेत्रीय असंतुलन को ठीक करना, सभी विद्यालयों में बच्चों को मैरिट के

टिप्पणी

आधार पर प्रवेश सुनिश्चित करना तथा समाज के सुविधावंचित वर्गों के हितों का संरक्षण करना।

5) **साक्षरता तथा प्रौढ़ शिक्षा को प्रचारित करनाः** जन निरक्षरता को समाप्त करना तथा व्यावसायिक तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों के कर्मियों में कार्यात्मक साक्षरता तथा सतत् शिक्षा प्रदान करना। माध्यमिक स्तर पर तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा को सही रूप में अंतिम बनाने के लिए ऐसा संयोजन अनिवार्य है।

6) **पुस्तकों का उत्पादनः** बच्चों के लिए उच्च गुणवत्तायुक्त पुस्तकों का उत्पादन विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के लिए कम लागत की पुस्तकें उपलब्ध कराना।

7) **खेलकूद और क्रीड़ाः** विद्यार्थियों का शारीरिक स्वस्थता व क्रीड़ा कौशल बढ़ाने के उद्देश्य से खेलकूद, क्रीड़ा आदि का विकास करना।

8) **अंशकालिक शिक्षा तथा पत्राचार पाठ्यक्रमः** बच्चों तथा विद्यालयी विद्यार्थियों, अध्यापकों तथा कर्मियों के लिए व्यापक स्तर पर अंशकालिक शिक्षा तथा पत्राचार पाठ्यक्रमों का विकास करना जो उसी स्तर के हों जैसे पूर्णकालिक पाठ्यक्रम के हैं।

लगभग दो दशकों तक देश की शिक्षा को इस नीति से दिशा मिली, धीमे परंतु निरंतर प्रगति हुई जिसमें बहुत सारे नवाचारी कार्यक्रम तथा पद्धतियाँ आरंभ की गई। राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में इसकी समीक्षा की गई।

2.3.2 राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986

इस नीति की विशेषता राष्ट्रीय एकता पर जोर तथा पाठ्यचर्या के दस सार भाग तत्त्व हैं। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली को यहाँ पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा पर आधारित होने के रूप में देखा जाता है, जिसमें एक सामान्य सार तत्व तथा अन्य घटक हैं जो लचीले हैं। सामान्य सार तत्त्व के अंतर्गत भारत का स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन का इतिहास, संवैधानिक दायित्व तथा अन्य विषयवस्तु जो राष्ट्रीय पहचान के द्योतक हैं। ये तत्व सभी विषय क्षेत्रों में समाहित हैं तथा इस प्रकार अभिकल्पित किए गए हैं, ताकि वे भारत की सर्वनिष्ठ सांस्कृतिक धरोहर, समतावादिता, लोकतंत्र तथा धर्म निरपेक्षता, लिंग समानता, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक बाधाओं को हटाना, लघु परिवार मानकों का पालन, वैज्ञानिक अभिवृत्ति या प्रकृति आदि मूल्यों को बढ़ावा दे।

सभी शैक्षिक कार्यक्रमों को धर्म निरपेक्ष मूल्यों के समनुरूप कार्यान्वित करने के लिए प्रस्तावित किया गया। समानता को प्रोत्साहित करने के लिए यह आवश्यक था कि सभी के लिए समान अवसर प्रदान किए जाए, मात्र पहुँच या अभिगम्यता की दृष्टि से ही नहीं, अपितु सफलता की अवस्थाओं की दृष्टि से भी। इसके अतिरिक्त, सभी की अंतर्निहित समानता का बोध पाठ्यचर्या के माध्यम से उत्पन्न किया जाना अपेक्षित था। प्रयोजन था कि सामाजिक परिवेश के माध्यम से तथा जन्म के संयोग से संचारित/उत्पन्न पूर्वग्रहों तथा मनोग्रंथियों को दूर करना।

टिप्पणी

इस नीति के मुख्य लक्षणों में निम्नलिखित सम्मिलित है:

1) सामान्य शैक्षिक संरचना

2) दस अभ्यंतर (कोर) तत्वों के साथ राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा

3) सभी के लिए समान शैक्षिक अवसर

4) प्रौढ़ शिक्षा को प्रोत्साहन

5) शिक्षा में वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकीय विकास का उपयोग

6) आपरेशन ब्लैक बोर्ड

7) अधिगम के न्यूनतम स्तर

8) गति निर्धारक नवोदय विद्यालय

9) शिक्षा का व्यवसायीकरण

10) अध्यापक की स्थिति को उभारना

11) सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, तथा वातावरणीय मामलों में बोध उत्पन्न करना

12) शिक्षा में उत्तरदायित्व

इस नीति ने सार्वत्रिक प्रारम्भिक शिक्षा को एक मज़बूत आधार प्रदान किया और बहुत सारे कार्यक्रम जो आरंभ किए गए राष्ट्रीय महत्व के थे। शीघ्र ही 1992 में नीति को संशोधित किया गया जिसमें प्राप्त करने हेतु उच्च लक्ष्यों को पुनः निर्धारित किया गया।

2.3.3 प्रारम्भिक शिक्षा के सरोकार

विभिन्न शैक्षिक मुद्दों से संबंधित सरोकार, विशेषकर प्रारम्भिक शिक्षा से संबंधित जो आयोगों और राष्ट्रीय नीतियों से प्राप्त हुए निम्नलिखित हैं:

- **निम्न पंजीयन:** प्राथमिक विद्यालयों में कुल पंजीयन बहुत निम्न पाया गया। अधिकांश बच्चे जो विद्यालय से बाहर थे, अधिक दूरी या भौतिक सुविधाओं के अभाव में विद्यालय नहीं जाते थे।
- **बीच में विद्यालय को छोड़ने वाले विद्यार्थियों की ऊँची दर (ड्रॉप आउट दर):** बच्चे बहुत से कारणों से विद्यालय छोड़ देते हैं, अधिकांश ऐसे हैं जो गरीब होने के कारण काम करके पैसा कमाना चाहते हैं। ड्राप आउट में अधिकांश लड़कियाँ होती हैं जिन्हें उनके माता–पिता, छोटे बच्चों की देखभाल के लिए घर पर रहने के लिए विवश कर देते हैं।
- कम योग्य या अप्रशिक्षित अध्यापकों के कारण, गाँव में रहने वाले बच्चे गुणवत्ता शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। वर्तमान वर्षों में योग्य अध्यापकों की संख्या बढ़ी है। इसका

टिप्पणी

कारण है सरकार तथा निजी समूहों के प्रयासों से ग्रामीण अध्यापकों के व्यावसायिक प्रशिक्षण में सुधार लाया जाना।

- ग्रामीण विद्यालयों के लिए अधिक अध्यापकों की प्राप्ति के लिए राज्य के दिशा–निर्देशों के कारण कठिनाई हो रही है क्योंकि इनके अंतर्गत उच्च विद्यार्थी–अध्यापक अनुपात को ही स्वीकृति दी जाती है।
- शिक्षण की गुणवत्ता निम्न स्तर की होने से सफल विद्यार्थियों की गुणवत्ता असंतोषजनक होती है।
- पूर्व प्राथमिक तथा प्रारम्भिक विद्यालयों में नेतृत्व तथा पर्यवेक्षण को मज़बूत बनाने की आवश्यकता है। यह कार्य अधिक से अधिक अध्यापकों को व्यावसायिक प्रशिक्षण और पुनः प्रशिक्षण देने से किया जा सकता है जिसमें प्रधानाध्यापक व पर्यवेक्षक भी सम्मिलित होने चाहिए।
- वर्तमान परीक्षा प्रणाली को सतत् व व्यापक परीक्षा प्रणाली से बदलना।
- असमानता – लैंगिक विषमता, शहरी–ग्रामीण विषमता, क्षेत्रीय विषमता आदि।
- सूचना संचार प्रौद्योगिकी के प्रति सकारात्मक मनोवृत्ति का निर्माण।

2.4 आठ वर्षीय प्रारम्भिक शिक्षा प्रणाली की संरचना

शैक्षिक संरचना

ऐसा सोचा गया कि देश के सभी भागों में मौटे तौर पर एक जैसी शैक्षिक संरचना बनाना लाभदाय होगा। और अंतिम उद्देश्य 10+2+3 प्रणाली अनाई गई जिसमें दो वर्ष की सीनियर सैकेंडरी अवस्था जो स्थानीय परिस्थिति के अनुसार विद्यालयों, महाविद्यालयों या दोनों में हो सकती है।

शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली के अंतर्गत, जैसा कि कोठारी आयोग ने प्रस्तावित किया था, 10+2+3 प्रारूप के आधार पर सामान्य शैक्षिक संरचना पर अनुशंसित किया गया। विद्यालयी शिक्षा की इस एक समान संरचना को सारे देश में अपना लिया गया है। हालाँकि, राज्यों के अंदर कुछ बातों के संदर्भ में विभिन्नताएँ भी हैं: जैसे प्राथमिक विद्यालय में कक्षाओं की संख्या कितनी हो, उच्च प्राथमिक में कितनी, तथा हाई तथा सीनियर सैकेंडरी में कितनी–कितनी कक्षाएँ हों; प्रथम कक्षा में प्रवेश पाते समय आयु कितनी होनी चाहिए, शिक्षा का माध्यम, सार्वजनिक परीक्षा, हिंदी और अंग्रेजी की पढ़ाई, एक वर्ष में अध्यापन दिवस, शैक्षिक सत्र, छुट्टियों की अवधि, शुल्क संरचना, अनिवार्य शिक्षा आदि।

प्रारम्भिक अवस्था के अंतर्गत प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक या मिडिल अवस्थाएँ आती हैं। 10 वर्षों का आगे विभाजन इस प्रकार है: प्रारम्भिक स्तर में 5 वर्ष का प्राथमिक तथा 3 वर्ष का उच्च प्राथमिक, इसके पश्चात् दो वर्ष का उच्च विद्यालय आता है।

नीचे दी गई तालिका में अधिकांश राज्यों के स्कूली व्यवस्था के विभाजन को दर्शाती है:

तालिका 1: भारत में विद्यालयी शिक्षा प्रणाली की संरचना

स्कूलन की अवस्था	पूर्व–प्राथमिक	निम्न–प्राथमिक	उच्च–प्राथमिक	माध्यमिक	वरिष्ठ माध्यमिक
कक्षाएँ	नर्सरी, (LKG/UKG)	कक्षा 1 से 5 तक	कक्षा 6 से 8 तक	कक्षा 9 से 10 तक	कक्षा 11 से 12
अवधि	2 वर्ष	5 वर्ष	3 वर्ष	2 वर्ष	2 वर्ष
आयु स्तर	3 से 6 वर्ष	6 से 11 वर्ष	11 से 14 वर्ष	14 से 16 वर्ष	16 से 18 वर्ष

पूर्व प्राथमिक: भारतीय शिक्षा की सामान्य संरचना में, प्राथमिक शिक्षा बच्चे के अधिगम का आधार निर्मित करती है। इसे नर्सरी, निम्न किंडरगार्टेन तथा उच्च किंडरगार्टेन में विभाजित किया गया है। इस अवस्था में बच्चे को औपचारिक विद्यालय जीवन से परिचित कराया जाता है। इसके अतिरिक्त उसमें लेखन तथा पठन कौशलों का विकास करने का प्रयास किया जाता है।

निम्न प्राथमिक: एक बच्चा उच्च किंडरगार्टेन उत्तीर्ण करने के पश्चात् अथवा सीधे किसी प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश पाता है। निम्न प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थी को विभिन्न विषयों के बारे में पता चलता है। प्राथमिक विद्यालय पाठ्यचर्या में सामान्य शिक्षा पर बल दिया जाता है जिसके अंतर्गत बेसिक विषय जैसे पढ़ना, लिखना तथा अंकगणित आता है तथा अनुपूरक के रूप में इतिहास, नागरिकशास्त्र, तथा भूगोल एवं पर्यावरण विज्ञान आते हैं। अधिकांश राज्यों में आयु वर्ग 6 से 11 वर्ष के बच्चे इस आयु में कक्षा 1 से 5 में पढ़ते हैं। तथापि, कुछ राज्यों में इस अवस्था में 1 से 4 तक की कक्षाएँ होती हैं। निम्न प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम प्राय: मातृ भाषा होती है जो कि हिंदी अथवा कोई अन्य क्षेत्रीय भाषा होगी।

उच्च प्राथमिक स्तर: इस स्तर पर कक्षा 6 से 8 तक पढ़ने वाले बच्चे आते हैं। उच्च प्राथमिक स्तर से दूसरी भाषाएँ, अंग्रेजी और/या हिंदी (यदि हिंदी मातृ भाषा नहीं हो तो) लागू कर दी जाती है। कक्षा पाँचवीं के बाद अंग्रेजी भाषा को लागू कर दिया जाता है।

2.5 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एन.सी.एफ.)

कोई भी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली सामान्य पाठ्यचर्या प्रणाली पर आधारित होती है जिसका परिरूप राष्ट्रीय आवश्यकताओं व अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर किया जाता है। भारत में भी विभिन्न नीतियों को ध्यान में रखते हुए समय–समय पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा का परिरूप तैयार किया गया और उसे देशभर में लागू किया गया। तत्पश्चात् उस रूपरेखा की राष्ट्रीय लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए समीक्षा की गई। यहाँ हम नवीनतम राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एन.सी.एफ. 2005) जो आजकल लागू किया जा चुका है, की समीक्षा करेंगे।

टिप्पणी

2.5.1 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एन.सी.एफ.) 2005

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2005 ने एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का विकास करने के साधन के रूप में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा को प्रस्तावित किया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति – प्रोग्राम ऑफ एक्शन (पी ओ ए) ने 14 वर्ष तक के बच्चों के सार्वत्रिक नामांकन तथा सार्वत्रिक अवधारण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से तथा विद्यालयी शिक्षा में सार्थक सुधार लाने की दृष्टि से एक बाल केन्द्रित उपागम पर विचार किया था (पी ओ ए, पृ. 77)।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा की कल्पना शिक्षा प्रणाली को आधुनिक बनाने की दृष्टि से की गई थी। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2005, मुदालियर आयोग, 1952 तथा कोठारी आयोग, 1966 की संस्तुतियों का हवाला देता है तथा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 1975; 1988 तथा 2000 का पुनर्वलोकन या पुनर्रीक्षण करता है। इसके निर्माण में सन् 1993 में प्रकाशित रिपोर्ट, लर्निंग विदआउट बर्डन (बोझ मुक्त अधिगम) तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 से पर्याप्त सहायता ली गई है। इन नीतियों तथा यशपाल समिति की अनुशंसाओं पर विचार करने के पश्चात् एक नए संशोधित, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा की 2005 में रचना की गई जो पूरे देश में आजकल लागू किया जा रहा है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 बच्चों पर पाठ्यचर्या बोझ की गहराई से जाँच करता है और एक ऐसी रूपरेखा जिसमें अध्यापक ऐसी अधिगम अनुभूतियाँ चुनने व देने के लिए स्वतंत्र हैं जो उनकी दृष्टि से अच्छे अधिगम के लिए उपयोगी हैं। इसका यह विचार है कि शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए पाठ्यचर्या एक ऐसे ढाँचे के रूप में कार्य करती है जो अपेक्षित अनुभवों के देने के लिए सहायक है। मीडिया तथा शैक्षिक प्रौद्योगिकी पाठ्यचर्या संपादन के लिए प्रभावी साधन हो सकते हैं। बच्चों को यह समझना चाहिए कि अधिगम कैसे किया जा सकता है और कैसे वे अपने ज्ञान की स्वयं रचना कर सकते हैं ताकि एक अच्छे सृजनात्मक तथा सुखद अधिगम की अनुभूति हो सके।

संशोधित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा के प्रमुख लक्षण नीचे दिए गए हैं:

निर्देशक सिद्धांत

पाठ्यचर्या को बच्चों के लिए समावेशी तथा एक सार्थक अनुभव बनाने के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा में उन सभी अच्छे विचारों को सम्मिलित करने अथवा कार्यान्वित करने का प्रयास किया गया है जो अतीत में विभिन्न आयोगों तथा समितियों द्वारा अनुशांसित किए गए थे। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा चार निर्देशक सिद्धांतों पर आधारित है: **क) विद्यालय के बाहर के ज्ञान को संबद्ध करना; ख) सुनिश्चित करना कि अध्येता रटंत विधियों से दूर रहें; ग) पाठ्यचर्या को इस प्रकार संवर्द्धित करना कि यह पाठ्यपुस्तकों से आगे जा सकें; तथा घ) परीक्षाओं को अधिक लचीला बनाना।**

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा इस बोध की आलोचना करती है कि बालक ज्ञान का एक निष्क्रिय प्रापक/ग्राही है। इसके विपरीत इस बात पर बल देती है कि बच्चे को ज्ञान के सृजन में एक क्रियाशील प्रतिभागी बनाया जा सकता है। इसके लिए उन्हें प्रश्न पूछने,

विद्यालय में सीखे गए ज्ञान को बाह्य घटनाओं से जोड़ने, अपने अनुभवों के आधार पर अपने शब्दों में प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित करना होगा, मात्र स्मरण करना नहीं।

यह दर्शाता है कि अपने साथी विद्यार्थियों (समकक्ष), अध्यापकों, अपने से बड़े और छोटे व्यक्तियों से अन्योन्यक्रिया करने से बहुत सारी समृद्ध अधिगम संभावनाओं का मार्ग खुल जाता है। अतः अधिगम क्रियाकलाप तथा अनुभव इस प्रकार अभिकल्पित करने होंगे कि बच्चे पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त वेबसाइटों से ज्ञान ढूँढ़ें, अपने अनुभवों से, घर से समुदाय से लाइब्रेरी से ज्ञान की खोज करें। पाठ योजना का उपागम भी हरबार्शियन चरणों की बजाए एक ज्ञान रचनावादी अधिगम उपागम अपनाना पड़ेगा – क्रियाकलाप की इस प्रकार योजना बनाना जिसमें बच्चों के लिए चिंतन करने की चुनौतियाँ हों, उन्हें सोचना पड़े और जो वे सीख रहे हैं उस की जाँच की जाए।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा में भाषाओं, गणित, प्राकृतिक विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान को सीखने संबंधी महत्वपूर्ण परिवर्तन सुझाए गए हैं, इस दृष्टि से कि इन विषयों की शिक्षा बच्चों की वर्तमान व भविष्य के लिए अधिक संगत हो सके।

भाषा के संदर्भ में मातृ भाषा को शिक्षा के माध्यम पर बल देते हुए त्रिभाषा फार्मूला को कार्यान्वित करने की अनुशंसा की। इस बात को महत्वपूर्ण माना कि भाषा सभी विषयों का अनिवार्य भाग होता है, क्योंकि पठन, लेखन, श्रवण, तथा वाक (बोलना) सभी विषयों में बच्चे की प्रगति में योगदान देते हैं। अतः भाषा अधिगम का मूल है।

अंग्रेजी, गणित, तथा विज्ञान तीन ऐसे केन्द्रीय विषय होते हैं जिनमें बहुत सारे बच्चे (लगभग 50 प्रतिशत) अनुत्तीर्ण हो जाते हैं। संभवतः प्रारम्भिक शिक्षा प्रणाली की यह सबसे बड़ी कमी है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा इस विषय को संबोधित करती है। "विज्ञान अध्यापन" पर बने फोकस समूह ने विद्यालय विज्ञान पाठ्यचर्या में प्रयोग आधारित अधिगम पर बल दिया। विद्यालयों के पुस्तकालों, प्रयोगशालाओं, तथा वर्कशॉपों (कार्यशालाओं) को सुधारने की आवश्यकता है ताकि बाह्य परीक्षाओं के बोझ को कम करते हुए प्रयोग आधारित अध्यापन की संस्कृति को बढ़ाव दिया जा सके। लोक क्षेत्र से प्राप्त आँकड़ों का उपयोग करते हुए कम्प्यूटर आधारित प्रयोगों की आवश्यकता अनुभव की गई।

गणित अधिगम से बच्चे की चिंतन करने की तथा तर्क करने की शक्ति को बढ़ावा मिलना चाहिए, उसमें अमूर्त प्रत्ययों की कल्पना करने तथा उन्हें संचालित करने, समस्याओं का निर्माण करने तथा उनका समाधान करने की योग्यता आनी चाहिए। विज्ञान के अध्यापन की नई भूमिका यह होनी चाहिए कि इसके आधार पर बच्चों में दैनिक अनुभूतियों की जाँच करने तथा उनका विश्लेषण करने की योग्यता आ जानी चाहिए। पर्यावरण शिक्षा प्रत्येक विषय का भाग होना चाहिए। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा में यह अनुशंसा भी की गई है कि सामाजिक विज्ञान का अध्ययन कमजोर वर्गों के परिप्रेक्ष्य में भी करना चाहिए। इसमें लिंग न्याय तथा जनजातीय और दलित मामलों एवं अल्पसंख्यक वर्गों के प्रति संवेदनशीलता या सुग्राहिता के लिए अनुसंश की।

टिप्पणी

यह दस्तावेज हमारे ध्यान को "कार्य और शिक्षा" की ओर आकृष्ट करता है। कार्य को ज्ञान के एक नए रूप तथा मूल्य परिवर्धन के सृजन के रूप में देखा जाना चाहिए जोकि लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए अनिवार्य हैं। "कार्य" का संबंध हमारे पारंपरिक शिल्पों, विशेषतया शिल्प क्षेत्रों में, से होना चाहिए, ताकि आर्थिक संपदा और संस्कृति के इस महत्वपूर्ण स्रोत को शिक्षा से जोड़कर उपयुक्त रूप से काम में ला सकें।

इसमें पाठ्यचर्यात्मक स्थल तथा अधिगम स्रोतों पर भी चर्चा की गई है जिसमें पाठ्यपुस्तकें, पुस्तकालय, शैक्षिक प्रौद्योगिकी, उपकरण तथा प्रयोगशालाएँ शामिल हैं। इसमें सामग्री की बहुलता, अध्यापक स्वायत्तता की आवश्यकता, तथा व्यावसायिक स्वतंत्रता की आवश्यकता पर बल दिया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें विद्यालय स्तर पर शैक्षिक योजना तथा नेतृत्व को सम्मिलित किया गया है ताकि गुणवत्ता को सुधारा जा सके तथा इसे मॉनीटर किया जा सकें।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2000 को पुनर्वलोकन अथवा पुनर्रीक्षण विशेषतया बच्चों के पाठ्यचर्या बोझ को संबोधित करने की दृष्टि से आरंभ किया गया था। यशपाल समिति ने इस समस्या पर विचार किया, इसका विश्लेशण किया और पाया कि इसका उद्‌गम (मूल) हमारी व्यवस्था में निहित उस धारणा में है कि हम जानकारी को ज्ञान मान लेते हैं। इस रिपोर्ट में जिसका शीर्षक है "Learning without Burden" – बोझमुक्त अधिगम" समिति ने संकेत दिया कि विद्यालय में अधिगम एक सुखद अनुभव नहीं बन सकता जब तक कि हम बच्चे के प्रति अपनी इस धारणा को नहीं बदलते कि वह "ज्ञान का प्रापक" है और इस परंपरा से आगे नहीं बढ़ते जिसमें पाठ्यपुस्तकें परीक्षा का आधार मानी जाती हैं। प्रत्येक चीज को पढ़ाने का मनोवेग इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि हमें बच्चों के स्वयं की सृजनात्मक सहज प्रवृत्ति और उनके अपने अनुभवों से ज्ञान सृजन करने की योग्यता में हमारा विश्वास ही नहीं है।

"बोझ मुक्त अधिगम" नामक रिपोर्ट में सिलेबसों तथा पाठ्यपुस्तकों के परिरूप में एक मुख्य परिवर्तन की अनुशंसा की गई है। अध्यापन को बच्चों की सृजनात्मक प्रकृति को काम में लाने का साधन बनाने के लिए रिपोर्ट में विद्यालय पाठ्यचर्या तथा परीक्षा प्रणाली में एक मूल परिवर्तन लाने की अनुशंसा की है।

विवेचनात्मक अध्यापन

बच्चे अपनी अवस्थाओं (परिस्थितियों) तथा आवश्यकताओं के आलोचनात्मक प्रेक्षक होते हैं; अतः उनकी शिक्षा और भविष्य के अवसरों से संबंधित चर्चाओं और समस्या समाधान करने में उन्हें भागीदार बनाना चाहिए। इस दृष्टि से विद्यालय को इस बात की जानकारी होनी अनिवार्य है कि उनकी अनुभूतियाँ तथा दृष्टिकोण महत्वपूर्ण हैं और उन्हें ऐसे मानसिक कौशल विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए जो उन्हें स्वतंत्र रूप से चिंतन करने, तर्क करने में सहायता करें तथा जहाँ उपयुक्त तथा अनिवार्य समझें असहमति दर्शाने का साहस कर सकें। सहभागिता पूर्ण अधिगम और अध्यापन भावना और अनुभव का

कक्षा में एक निश्चित तथा मूल्यवान स्थान होना चाहिए। सही सहभागित्व विद्यार्थियों तथा अध्यापकों दोनों की अनुभूतियों से आरंभ होता है।

समालोचनात्मक (विवेचनात्मक) अध्यापन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक पक्षों से जुड़े मामलों पर विवेचित रूप से चिंतन करने का अवसर प्रदान करता है। इससे सामाजिक मामलों पर विभिन्न विचारों का स्वीकरण अपरिहार्य रूप से होता है तथा लोकतांत्रिक अन्योन्यक्रिया के लिए प्रतिबद्धता भी। एक समालोचनात्मक रूपरेखा सामाजिक मुद्दों को विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में देखने तथा यह समझने के लिए कि ये मुद्दे हमारे जीवन से कैसे जुड़े हैं, समझने में सहायता करता है।

समालोचनात्मक अध्यापन सामूहिक निर्णयन प्रक्रिया को सुगम बनाता है, इस कार्य को संपादित करने के लिए खुली चर्चाओं द्वारा बहु–विचारों को महत्व देता है, उन्हें प्रोत्साहित करता है, तथा एक ऐसी पाठ्यचर्या का निर्माण करता है जो इन परिस्थितियों के प्रति संवेदनशील है।

2.5.2 प्रारम्भिक विद्यालयी पाठ्यचर्या के लिए निहितार्थ

शैक्षिक परिदृश्य पर उभरे इन परिवर्धनों के फलस्वरूप तथा और शिक्षा के अधिकार (Right to Education - RTE) को सभी राज्यों में लागू करने के कारण देशभर में सभी स्तरों पर तत्काल कार्यवाही कर दी गई। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा के दिशा निर्देशों का अनुसरण करते हुए लगभग सभी राज्यों में एक नई पाठ्यचर्या का निर्माण किया गया तथा उसे लागू किया गया। साथ–साथ एन.सी.ई.आर.टी. ने सभी विषयों पर नई पाठ्यपुस्तकें तैयार की जो इन शैक्षिक सुधारों, दर्शन तथा पद्धति पर आधारित थी। प्रारम्भिक स्तर पर परीक्षाएँ समाप्त कर दी गई तथा सी.सी.ई. (व्यापक तथा सतत मूल्यांकन) की पद्धति को लागू किया गया है। सहभागी प्रबंधन की अवधारणा को व्यवहार्य रूप दे दिया गया है जिससे समुदाय तथा अन्य लाभग्राहियों को विद्यालय में सहभागी बना दिया गया है। अध्यापन–अधिगम प्रक्रिया में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आई.सी.टी.) को उचित स्थान अथवा महत्व दिया जा रहा है।

पाठ्यचर्या को सम्पादित करने की कुल अवधि 200 दिन निर्धारित की गई है। विद्यालय के वार्षिक कैलेंडर का जिला स्तर तक विकेन्द्रीकरण किया जा सकता है और इसका निर्धारण जिला पंचायतों के साथ परामर्श करके किया जा सकता है। गृह कार्य समय का ब्यौरा निम्न प्रकार है:

i) कक्षा II तक कोई गृह कार्य नहीं और प्राथमिक विद्यालय की कक्षा III से 2 घंटा प्रति सप्ताह

ii) माध्यमिक विद्यालय में एक घंटा प्रतिदिन या 5 से 6 घंटे प्रति सप्ताह

iii) उच्च तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में 2 घंटे प्रतिदिन या 11 से 12 घंटे प्रति सप्ताह

टिप्पणी

इन सभी परिवर्तनों के फलस्वरूप यह आवश्यक हो जाता है कि नए लक्ष्य और उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अध्यापक प्रशिक्षण को नए आयाम या नई शैक्षणिक प्रणाली होनी चाहिए। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा में अध्यापकों के नई भूमिकाओं तथा नए उत्तरदायित्वों की कल्पना की और उनके प्रशिक्षण के लिए बहुत सारे सुझाव दिए। अतः इन अवस्थितियों में अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों का पुनः प्रतिपादन किया जाए उन्हें प्रबलित किया जाए ताकि अध्यापन–अधिगम अवस्थितियों में अध्यापक एक प्रेरणादायक, सहायक तथा सुसाध्यक के रूप में कार्य करे ताकि बच्चे अपनी प्रतिभा को खोज कर सकें, अपनी शारीरिक तथा बौद्धिक क्षमताओं को संपूर्ण रूप से प्राप्त कर सकें, एक जिम्मेवार नागरिक के रूप में कार्य कर सकने के लिए चरित्र और अन्य अपेक्षित सामाजिक व मानवीय मूल्यों का विकास कर सके। एक ऐसा अधिगम परिवेश सुनिश्चित करने के लिए जिसमें अध्येताओं की विभिन्न आवश्यकताओं को संपोषित किया जा सके, अध्यापक स्वायत्तता तथा स्वतंत्रता अनिवार्य है।

ऐसे अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों का दबाव निम्नलिखित बातों पर होना चाहिए: ज्ञान के सृजन में अध्येताओं का सक्रिय सहभागित्व अधिगम का साझा संदर्भ, ज्ञान के निर्माण में एक सुसाध्यक के रूप में अध्यापक की भूमिका, अध्यापक शिक्षा के ज्ञान की बहुविषयक (multidisciplinary) प्रकृति, सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक आयामों का एकीकरण, और एक समीक्षात्मक परिप्रेक्ष्य से समकालीन भारतीय समाज के मुद्दों तथा मामलों के साथ संलग्नता।

इस संदर्भ में अध्यापक शिक्षा में भाषा–योग्यता की केन्द्रीयता और अध्यापकों के संवृत्तिकरण को मज़बूत बनाने का एक एकीकृत प्रतिरूप, महत्वपूर्ण हो जाते हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2005 को स्कूल पद्धतियों में परिवर्तन लाने के लिए सेवाकालीन अध्यापक शिक्षा को एक कटेलिस्ट (उत्प्रेरक) के रूप में देखता है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2005 तथा एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा तैयार किए गए सिलेबस विभिन्न राज्यों के लिए उनकी पाठ्यचर्या/पाठ्यक्रमों तथा नई पाठ्यपुस्तकों के नवीकरण के लिए मार्गदर्शक दस्तावेजों का कार्य कर सकते हैं। इनके आधार पर विभिन्न एस.सी.ई.आर.टी. सामान्य मानक सुनिश्चित करने के लिए इन्हें एक उपकरण के रूप में अपना सकती हैं।

2.6 सारांश

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् गठित विभिन्न शिक्षा आयोगों तथा समितियों की संस्तुतियों की समीक्षा और उन पर चर्चा के पश्चात् हमने इस इकाई में वर्तमान शिक्षा प्रणाली की उत्पत्ति तथा विकास के विषय में पढ़ा। हमने जाना कि राधाकृष्णन आयोग तथा कोठारी आयोग की सिफारिशों ने देश में किस भाँति सामान्य शिक्षा के विकास को तथा यशपाल समिति ने प्रारम्भिक शिक्षा के विकास को प्रभावित किया। हमने यह भी जाना कि किस भाँति ये सिफारिशें राष्ट्रीय नीतियों में प्रतिबिम्बित हुई।